

भालफौन

मूल्य तीस रुपये (30 00)

संस्करण 1985 © अनंत कुमार पाषाण
राजपाल एण्ड सन्स कदमोरी गेट, दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित
MAALKAUNS (Poetry) by Anant Kumar Pasban

मालकौंस

अनन्त कुमार पायाग



राजस्थान राज्य सरकार

उत्पाद बचपन की
त्रिनरी
मयान की ब्रदायगी
मात्रबाह
है ।

सगीत-समारम्भ के पूर्व (भूमिका-स्वरूप)

यह कविताएँ जिनमे से शायद कुछ आप पढ़ें और जो पढ़ें उनमे ने शायद कुछ आपका पसन्द भी जाय मरी व्यक्तिगत अनुभूति और सवेदनशील स्मृति की उपज है। इन्हे लिखते हुए कभी सोचा भी न था कि यह छपेंगी भी। और अब जब यह छप ही रही है ता मुझे इमका बिनकुल अनुमान नहीं है कि यह प्रयोगवात् के अनुकूल हैं या प्रगतिवात् के प्रतिबूल हैं सत्तरोत्तर कविता मे इनका कहीं कुछ स्थान है, या इनमे छायावादी शैली का पुनरुत्थान है। परम्परा की पुष्टि करती है कि परम्परा का चुनौती देती है।

परम्परा किस कहते हैं और वह अपन मे अलग कुछ है या अपने ही भीतर आत्ममात पुरखो की रीति है यह बहुत कठिन प्रश्न है। सगीत के इतिहास में तानसेन मे सम्बन्धित एक कथा है। उनका लडका विलासखान बाप मे मर्दा सीखता था मगर उसकी अत्यागी एकदम अलग थी। गुरु जब बाप हो और प्रिय और लोकावश्रुत हो तो ऐसी स्थिति कितनी सत्रासदायक हो सकती है एक अनुमान लगाया जा सकता है। इस बात को लेकर पिता और पुत्र में गरमागरमी हाती थी और पिता झुलाकर यह भी धमकी दे दे कि तुम्हें दिन से पुत्र को नहीं सिखायेंगे। मगर फिर सिखाने बट्ट और दिन के पुत्र की स्वाभाविक अत्यागी ही अलग थी। तानमन एक दिन मारते, चिल्लाते और कभी-कभी रोने तक लगते।

ऐसे होत-हाते वह दिन आया कि तानसेन अपने जब को उस कथा पर छोडकर नगवान का प्यारे हा गये। विलासखान के नान उन्की दोनों आखा स अनवरत आंसू बह रहे थे। किम्बाद ने निम्नलिखित के एक का प्रश्न करके विलासखान न टोडी राग गाया ता विलासखान को के रूप में प्रिय ही गया। सयने आश्चय स देखा कि तानसेन ने मनुष्य के न मनुष्य के ही जीवन मे वह कभी भुस्कु राये न थे

अपन पिता, दादा, परदादा, मुझे सारे सारे प्रश्नो जन्म हो के आप लोग आशीवाद दें कि उन्हें मरना है मैं मर नुसुनूँ।

सवाल उठता है, कि यह कथा के अन्त प्रश्न ही है। इसका वही दे सकता है, जिनमे धरु मे पृथ्वी के अन्तर्गत के समस्त तीव्र और कामल स्वर के अन्तर्गत के अन्तर्गत के अन्तर्गत के अन्तर्गत से आती तात्त्विक

44

को दुशाला डाले अन्दर बाहर आता-जाता देखता हूँ तो हाथ पैर ठड़े हो जाते हैं। इधर एक मनचले सगीतकार ने तो यहाँ तक कह डाला कि सगीत गाने की नहीं पढ़ने की चीज़ है, और वह पठ्य परम्परा का प्रथम आचाय है।

हो समझता है। कुछ भी हो सकता है। मगर मैं, जिसका सगीत का ज्ञान सीमित है और जो उस्तादों के सामने अपने को तानपूरा मिलाने के योग्य भी नहीं समझता, क्या कह सकता हूँ। सिवाय इसके कि आज सगीत पढ़ने की चीज़ है तो कल देखने की और परसा गिनन की चीज़ भी हा जायगा। बला वत्सला है। हिन्दी के जिस घराने के सगीतकारों के कारण यह घराना अग्रेज़ों और अन्य घराना से अलग है, वे सगीतकार तो बालन, पढ़ने और गाने को तीन चीज़ें समझते थे। हिन्दी के घराने में एक ऐसा नेत्रविहीन उस्ताद हो गया कि उसका गाना सुनने स्वयं भगवान आकर बैठते थे। यह बात इतनी लाकमाय है कि कलडरो पर और छपी हुई तसवीरा पर यह दृश्य कई बार अंकित हुआ है। दूसरे उस्ताद ने ऐसा सगीत बनाया कि जनपद गवाट लोगों की जबान पर चढ़ गया और यद्यपि उन्हें नाखिल प्राइज़ नहीं दिया जा सकता, मगर योरोप की महफ़िलों में उनके सुरों की धाक जमी। मीरा रानी थी और इस सगीत को गाकर अपन ही राज की गलियों में वह नाची। एक ऐसा सगीत का भूषण भी था कि जिसके सगीत को सुनकर देश के वीर रक्षक ने आततायी के छक्के छुड़ा दिये।

और जायस गाव का रहनेवाला चेचकरू और काना वह किस्तागो, जिसकी नायिका के विरह से गेहूँ का हृदय हमशा के लिए फट गया और तीले के गले में जब उसने अपनी पानी बाधी तो तीले के गले में नील पड़ गयी।

मगर यह तो बहुत ही पुरानी बात है। उसके बाद तो हिन्दी के घराने के अदाज कई कई तरह से बदले। कितने ही नये ठाटा पर गत-आलाप ईजाद हुए। इस घराने ने गुरु से ही सनातन धर्म की ही तरह विश्व के अधुनातन अदाजा को आजमाकर अपना सनातनता सिद्ध की।

जब समुद्रपार के कुछ बेपारी यहाँ आये तब फिर नये सिरे से राग रागिनिया का श्रु गार किया गया।

कभी तो छाया की बादिया में स नवीन पल्लव चुने गये, अनजाने परिमल को पकड़ा गया भरन पर खड़े होकर लहर को देखा गया—तुमुल कोलाहल-वलह में हृदय की बात को सुना गया

कभी पक्षित, मोमिन पादरियों के फदा को बाटकर पाठक को मेहदी-रजित मूडल हपेली से भाणिक मधु का प्याला लेने का निमन्त्रण दिया गया

फिर एक दौर ऐसा भी गुज़रा कि मसागाडी की धू चरर-मरर में ही सातो राग मुनायो पडने लग। छाया की बादिया में घूमते लोग छुद एव नबाव के उगाय गुलावा में उस शृकुरमुत्ता को देखने लगे, जो उगाये नहीं उगता। पलाग-

वन की खोज के बाद मिट्टी और फूल का सम्बन्ध समझा गया। प्रवासी कवि प्रिया के लोचनो मे छापी सोने की गुलमार तो पहले ही देख चुका था।

फिर ब्रम बनाने वाले महफिल मे घुस आये जि हे चिंता हुई—“हाय, वह प्रतिदिन पराजय दिन छिपे के बाद।”

फिर तो वह हगामा मचा, वह सितार टूटे, वह तबलो को फाडा गया कि सगीत भाग कर किवाड के पीछे छिप गया। किसी ने कहा भी कि अब तो नूतन गीत पुराने-मे लगते हैं। किसी ने कहा कि ऐसा सगीत बजना चाहिए कि भारत-माता सोते-सोते उठ खडी हो। किसी ने कहा कि भाव को छोडो, अभाव की बात करो—विचार ही सगीत है। किसी ने सगीत को असगीत और सगति को असगति बनाने का ही सकल्प कर डाला। इधर शास्त्राथ चलते रहे और उधर जनता चिल्लाती रही—“बोर्ड दिल की चीख सुनाओ उस्ताद, जैसे तुम्हारे उस्ताद सुनाते थे।”

इसपर एक विद्वान ने गुस्से म कहा—“दिल किसका ? तुम्हारा या हमारा ? पुराने उस्ताद गाने को सगीत समझते थे। हमारा सगीत पढने के लिए है और उसके प्रथम आचाम हैं हम। आधुनिक बना। प्राचीन उस्तादो को भूल जाओ।”

मगर आधुनिक कसे बने ? शहर का बणन करके ? ता नया कालिदास ने रघुवश मे अपने समय क शहर का अविस्मरणीय बणन नहीं किया ? स्पेंसर ने लदन को अपनी धात्री बताया। वायरन के ‘चाइल्ड हॅरल्ड मे ससार के प्राय सब शहरो का उदात्त बणन है।

औद्योगीकरण पर लिखकर ? क्या मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुआ पर लिखना आधुनिक, और प्रकृति द्वारा निर्मित सृष्टि पर लिखना पुरातन ? यदि भिखारी की मरी हुई लडकी पर शोकगीत गाय तो प्रगतिशील, और किसी करोडपति की तासरी मजिल से गिरकर मर जानेवाली इक्लीती लडकी पर लिखें तो प्रति-क्रियावादी ?

क्या योन की निलज्ज स्वीकति ही आधुनिकता है। ऋग्वेद म आयों ने स्त्रियो के अभाव मे अपने का ऐसे मेढक बताया है जा बर्षा के अभाव मे सूख रह हैं। उल्टा-सीधा रहस्यमय लिखना आधुनिकता है ? हमारे घराने मे कूटपदो और जलटबासिया की कमी है। नयो भाषा ? कबीर ने माया को रमय्या की जोह बताकर उससे ससाररूपी बाजार लुटवाया है। क्या विदेशी अदायगी से सीखना आधुनिकता है ? तो यह तो हम हमेशा स करते आय है। सितार तो ईजाद ही एक विदेशी ने किया। खयाल मे गाने की प्रणाली ही विदेशिया ने विकसित की। हमारी सारी चेतना ही अविभाज्य मानव-चेतना की स्वीकृति है। महाप्रभु र्चत-यदव का अत्यन्त प्रिय शिष्य एक पठान था।

मालवे के आचलिक प्रदेशो मे बीते हुए शैशव मे मैंने बहुत कुछ अपनी भोली मे भरा—नमदा के गीत, चम्बल की चीत्कार, महाकाल के मंदिर म होता

घण्टानाद, ओकारेस्वर की पावनता, ग्यातिपर ये किले पर मुनी ह्याओ की आवाज, घोरन की घाटी की गहराई पतासा ये दहकते जगना की आग, गरमा ये मौलो फँले शेत और सत्रस अधिष अमलताम के घने जगला से बटोग गाना

अदायगी कुछ अपने पुव के उस्ताग मे मीगने की योगिना की, यद्यपि बच्चा ही रहा । कुछ सेता मे गाते किगाग म, कुछ गहर म राजे य तिनो मे गडे सवेर आते फकीरो से, कुछ मला म, कुछ भीला मे, कुछ पशियां मे और कुछ ह्वाआ स

जानता हूँ कि गाना नही आया मगर जब भी जीवन के अकेले पथ पर अघकार बटने लगा तब गाया । आप कह सकते हैं—“विलग माधियो मे ही कोई पधिव सुना, गाना आता है ।” गायन जब आप अकेले हा, माधिया म विलग हो जायें और अधेरा बढने गग ता यह गीत आपका जावामा द सकें । शायद आपका एहसान हा कि अधेरा ता जीवन का एक अग ही हे जोर उसे दूर करे का उपाय ही गीत है । सयकी सडक मुनमान है मगर एक गीत की आवाज उठन स जोर मक्का स भी उस आवाज का उत्तर आयेगा । गायद अपने विलग हुए माधिया की ही आवाज हा ।

घोर निरागा जोर जदम्य आम्था, शीवानी मोहव्यत और बवफाई, तरुणा के स्वप्न और वद्धावस्था का चिडचिडागन, भयकर विग्नव और अटूट गति—सब मिलकर ही जीवन है । हमारे सुप्त-दुग् आगा निराशा एक हैं ।

‘लौटा सि दगाद नामक अपने प्रथम सग्रह मे मनुष्य के जीवन का जलयात्रा का रूपक रकर मैन स्वय उस मित्रवाट जहाजी कहा था और जहाज लेकर निकलने से गुरु किया था । लौटय वह रहम्य है जा सदा से निर्मोछ है और सदा रहेगा । वह ओभन होकर भी सामन है और सामने होकर भी ओभल है । कोई एक तबर कोई एक अनाज, कोई एक दृष्टिकोण जीवन का खडन है । यहा गाय और अयाय का युद्ध जब धुरु होता है तो दोनो ही पक्ष अपने-अपने ढंग स प्लास्टिक मजरी करके सत्य की शकल बदलने की कोशिश करत है ।

केवल कालका प्रवाह मत्य है । उसम बहता हुआ सब, यदि वह बहाव के साथ स्वीकत हा । बीच म टापू भी हैं, सफेद बादलो के प्रातविम्ब, तट पर की सैकत—सब एकसाथ है । महाभारत निरंतर है । धय है द्रोपदी, जो महाप्रस्थान म सबसे पहले गिरी । धय है धमराज, जो अकेले ही चलत चले गये । दुबलता से ही महा नता विदवसनीय है और महानता स ही दुबलता ग्राह्य । भगवान ने गीता म अजुन से कहा— यह लोग बिना तरे मारे भी विनष्ट हा जायेंग । तू केवल साधन बन ।’

इस सग्रह म कही मीड, कही झाला कही गत मिले, कही कोई स्वर आलाप का हो, कही द्रुत मे गाने स आपका विनोद हो, तो आप समझें कि सितार निर्जीव है, साधन है उसम जीवन खालनवाली उँगलियां किसी और की हैं ।

मगर सितार को एकत्र न मुला दें । साधन का भी कुछ महत्व है ।

क्रम

मालकौंस	15	लुटेरे	40
यह महकती शाम	16	देह की कारा	41
मन-महल	17	अरण्य दशम	42
वाती की बेला	18	आओ, खोदें जमीन	43
सुनो सुजाते	19	अतृप्त वासना	44
घर छोड़त हुए	20	वकवास का अंत	45
आश्चय	21	उस्ताद के प्रति	46
झाला	22	वैफियत	47
चतुर लोग	23	तपण	48
नज़रकंद	24	कछुआ और हिरन	49
तीन जन	25	बीत मिलन	50
सामान	26	वल्मीक	51
शलभ	27	वसन्त	52
उत्सव की प्रतीक्षा	28	स्मृतियाँ के दशम	53
यह ताँ अपने हैं	29	हे प्रभु	54
तरुआ-नीचे हँसनेवाली	30	सूरज का रजिस्टर	55
सगाई	31	जलयात्रा का अंत	56
विदेह	32	ज्यादा मत ठहरना	57
उपालम्भ	33	गिरपतार राजा का महल	58
तकाजा	34	मुचुकन्द	59
नागिन	35	ऊहापोह	60
चाभी	36	भूलभुलैया	61
गुलाब	37	जो भागेगा बच जायेगा	62
महफिल के बाद का खत	38	राममणि की याद	63
हेमन्त-भावस	39	याचना	64

अनिर्दिष्ट	65	तन-तरवर	91
क्षेप सब हुआ है	66	बंदर	92
छायनी	67	समझौते	93
भोर का तारा	68	माण्डूगढ म रात	94
कवियो के घर	69	योगमाया	95
भीम	70	तोता	96
मरुबाला	71	दायित्व	97
गंगा की खोज	72	कवि की मृत्यु	98
लौट जा	73	खरीदारो से	99
पत्थर की नाव	74	चॅस्टर पहने तुम	100
तपस्वी	75	जाते-जात	101
देखते नहीं हो ?	76	उठ गयी गोष्ठियाँ	102
जलमग्न	77	वे बीते सवेरे	103
सीढियाँ और बालक	78	परिश्रमा	104
घोट-बलब की एक घटना	79	ताराशगरी	105
अशोक-तले विनोद	80	ऋणानुबंध	106
नौका पर वेणु-वादन	81	बालांतर	107
मेहदी का स्वप्न	82	कविता	108
केवल तुमने	83	भील की स्मृति	109
मेरा क्रोध और तुम	84	बनाया एक गहर	110
तुम्हारा चेहरा	85	अगर कभी ऐसा हो	111
अनिमत्रित	86	शहसवार	112
एक ताते की मृत्यु	87	दावत की समाप्ति	113
हंस का प्रयाण	88	सचलाइट	114
अनंत यात्रा	89	लडका और घोडा	115
द्वीपस्वामिनी को विदा	90	माँ	116

धीरे-धीरे फिर बड़ा धरण,
यात्र्य की शैलियों का प्रांगण
कर पार, कृञ्ज-साक्ष्य सुघर
आई, साक्ष्य भार धर-धर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौंस नय वीणा पर

—'निराला'

कौन ये हिमालयों के बठ मे
प्यासा मालकौंस धर गया है
बोल उठी पास की तराइयाँ
नदियों का आचरण नया है

—वीरेन्द्र मिश्र

मालकौंस

मेरे सोने के कमरे की
खिड़की के बाहर का शिरीष
हर रात पूछता है मुझसे—
'जो बट कभी इस कमरे में
थी मालकौंस गाया करती,
वह कहाँ गयी ?'

वह करवट लेती कुछ चिड़ियों,
वह रक-रक कर जाती झिल्ली,
ऊपर फानूस और नीचे
वह बिछा हुआ बालीन ताल—
सब जैसे कोई और वहाँ है
ऐसे स्वयं पूछता मैं—
'वह कहाँ गयी ?'

फानूस झूलता मारुत में,
नभ ज्योतिष होता विद्युत में,
खिड़की से कोई गुजरता है
जाते-जाते वह कहता है—
'वह राजदूतिका थी भविष्य की,
चली गयी है अपने घर !
जाने के पहले लेकिन कवि,
वह कविता के अक्षर-अक्षर
को मालकौंस की नव अदायगी
सिखा गयी !'

वह महकती शाम

साँवली-सी साँभ की भाँई—
कि लेकर कई मेहदी के महकते फूल के गुच्छे
बुलाती नाम मेरा
तुम चली आयी ।

बहुत हलकी जामनी साडी
लाल जिसका बहुत चौड़ा पाद,
गुलाबी जाड़ा, ठिठुरते-से खड़े सब झाड़ ।
चैस्टर एक पहन पट्टू का
बुलाती नाम मेरा
तुम चली आयी ।

पेड सहजन के वही कम्पाउंड में
बहुत-से थे, सभी फूला से भरे थे,
हर्ष की सब भावनाओं की
बजाती तुम गतें आयी ।

सजी-सी थी, बजी-सी थी,
वह पुरानी चीज फिर सगीत की
मानो हुई साकार—
'ऐसी छबीली नार कर कर सिंगार ।'

महकती वह शाम, मेरा नाम
मासकौंस भुक्तको धुलाने आ गया बन प्यार !

मन-महल

तुम दो क्षण को मुझको
अपनी मित्रराय बना लो ।

वह किंगोर कोमल अगुलिया
जब तारा का कण्ठ जगा दें,
पश्चिम में आवण्ठ डूबता
एवाकी रवि अस्वारोही
जो कहता है प्रतिदिन बोही
कह— राग से आग बुझा दो !'

मालकौस जिसको गाने से
बोई राही खाया वन में,
पेड़ तले सो गया, जगा तो
महल खड़ा था उसके मन में ।
उसी महल में था अलिद वह
बजा रही जिसमें सितार थी,
और क्षितिज तक केवल सागर
था—लहरा में
राही कभी डूब, उतराता
था—लेकिन
यह ही चिल्लाता—
था—

'तुम दो क्षण को मुझका
अपनी मित्रराय बना लो ।'

1983

बाती की बेला

हुई दिया-बाती की बेला,
ईंटों का घर पत्थर का हो,
बना अकेला ।

द्वार-द्वार पर कोई डरता-डरता
दस्तक देता,
तुलसी के चौबारे पर जा
रखकर दीप
सहन से होकर
पीपल के नीचे देवी के सम्मुख
गुडहल रखता,
हाथ जोड़
मन-ही-मन में
कुछ कहता है
आहिस्ता
आहिस्ता ।

फिर गंगा में ऊँचाई से बूढ़ा कोई
ऐसा लगता,
रह जाती है फिर नीरवता !

घाटों पर मुनसान खड़े हो
ऐसा दिखता—
कुछ सफेद-सा दूर बहा जा रहा
ढूँढ़ता और उतरता
निपट अवेला—

ऐसे ही जब रोज़ यहाँ पर
होती है बाती की बेला ।

सुनो सुजाते

एक धार बस एक धार ही
नरम धूप में सुबह-सुबह की
भूले हुए दिनो की फिर से
सारी गतें बजा दो ।

याद-याद पर मीठ खींच दो ।
नीले नभ में घन दक् जायें,
दीर्घ यत्रणा दीन हृदय की
तारा में रम गा दो ।

देख एक-दूसरे को हम
बिलावजह हैसते रहते थे,
तेज भागते भाव सकल वह
द्रुत में ला भाला दो ।

शिशिर समीर पत्र कुछ पीले—
ओसघुले जो सोनल उजले
लाकर बरसाय सितार पर,
तुम बसत फिर ला नो ।

मालवीस बह चले मलय-मा
ध्यान न समय और असमय बा,
सुनो सुजाते, चदन-सह को
इस मन के महका दो ।

1983

घर छोड़ते हुए

घर छोड़कर निकलते ही
सामने की सड़क पर शरीफेवाला बैठा मिला,
याद आया
बचपन में शरीफे के बीजो से मुह भर जाता था ।

फिर भी दुखी नहीं हुआ ।

पुल चढ़कर उतर गया—
याद आया
पुल पर सध्या को सरकती धूप के
साथ-साथ भागकर हम उसे पकड़ते थे ।

फिर भी भावुक नहीं बना
एक बक्स, एक बिस्तर
यत्रवत रेल पर चढ़ गया,
इतना ही सामान लेकर एक दिन इस शहर में आया था
कसे नये घर में जा उसको सजाया था ।
बीच अहाते में एक कचनार लगाया था ।

फूलो के आने पर
एक दिन उसके नीचे दरी पर बैठ तुमने
मालकौस गाया था

आख में अनायास आँसू आ, भर गया ।

आश्चर्य

वई सुबहा का दालाना में
खभे के लम्बे सामे से
टिका तुम्हारा साया देखा ।

बघो तब वे बेश तुम्हारे
विचित्र कम्पित थे समीर में
काले नयन बड़े बजरारे—
तुम्ह पास ही आया देखा ।

मिता तानपूरा जब तुमने
भालकौस को मूत किया था,
थोडा एव अपन पत्ले से
होठो के ऊपर जसे कुछ
स्वेद बिन्दु-सा पोछ लिया था ।

नारगी जगली फूलो को
हाते से मैं चुन लाया था
और तुम्हें नारगी रग से नहलाया था ।

आज सुबह उठकर तरु-तरु पर
परिचित नारगी फूलो को
मैंने ज्यो खिल आया देखा ।

1983

झालल

यलद है, सगीत की महफिल, जिसे हम छोडकर उस रलत
बलहर आ गय दललन में थे,
कुछ भेंवें ऊपर हुई थी, पर लडकपन
समझलर वदरुस्त सबने वर लिया थल ।

तलरकी की छलँव म वलँटलभरी कुछ झलडिया वे
फूल नलरगी मनोहर चुन अँघेरे मे भरे दलमन
तुम्हारे पलस वलपस आ गयल थल ।
सुई भी जलने वहल से मिल गई थी,
एक अनगड-सल वनल गजरल तुम्हे पहनल दिया थल ।

फूल तब बेलल रहल थल
और अनबोलेल बहुत कुछ
वय-सौरभ-सल पवन मे भर रहल थल,
और झले मे मधुर द्रुत
मललकीस सितलर पर तब वज रहल थल ।

और तब से
वही बनकर रलग जीवत बज रहल है,
किन्तु त्रम उल्टल हुआ है
क्योकि झललल जोड के पश्चलत वच वल बज चुवल है,
और वही रलग तब से विलम्बित मे बज रहल है ।

चतुर लोग

तब हम दालान में
सरकड़े के मोड़ो पर बैठकर
एक दूसरे की क्या-क्या चिन्ताते थे—
या लडकपन

किन्तु हम दोनों अकेले तो नहीं थे
साथ दो परिवार थे,
जो कि बहकै लडकपन की ठीक रसने की
सिपहसालार थे !

बहुत भोले थे, मगर हम
था हमें उनमें बहुत विश्वास,
सभी अपनी बात हमें उनको बताते थे,
पत्र भी अपने-अपने उनको पढ़ाते थे ।

सफ़्त हमको अलग करने में हुए वे
दूरियों पर जा पड़े हम,
चतुर अपने को समझकर वह बहुत ही खुश हुए थे ।

मगर अब ?

दूर रहकर भी बहुत ही उल्लसित हैं मन हमार ।
और वे पीड़ित बहुत सन्नस्त हैं
ज्यादा चतुर हैं,
मगर धरराते बहुत एकान्त से हैं,
रात को भी सो न पाते हैं,
बहुत करके यत्न भी वे रो न पाते हैं ।

नज़रक़ंद

शहज़ादी,
यह तो हम समझ गये कि हम नज़रक़ंद हैं,
मगर यह नज़र तो हर गज़र
बदलती ही नज़र आती है ।
कभी जब लगता है दिन है रिहाई का
क़ंद की मियाद और बढ़ जाती है ।

माना इस सिडकी से दिसते हैं
दूर सिंधुबीच खड़े किले, कूल चालू के,
सामने पहाडो पर नीचे झुक आते हैं
बादल, भाग जाते हैं पहाडो को छू के ।

मगर हर रोज़ सिडकी खोलने के बाद
दश्य क्यों बदल जाता है ?
जहाँ समंदर था वहाँ एक बहुत बड़ा
फैला शहर नज़र आता है ।
शहर में सैकड़ो आदमी चिमटे ले
जैसे किसी दरगाह पर कब्वाली गाते हैं

कवत-बेकवत जैसे मेरे ही भीतर कही
मुअज़्ज़िन अज़ान की आवाज़ लगाते हैं ।

1983

तीन जन

नदी की रेत पर
पानी से अभी-अभी निकले ऊदबिलाव की
धूप में चमकती मूँछें देखने के बाद
वह छोट-छाट पीले फूलों से लद
बयूल के जगल पार कर
अपने लाल सपरँल और हरी जाफरीबासे
मकान में सौट आया ।

दरवाजा खोलने के बाद
किसी नारी-कंठ ने दबी आवाज से
पूछा था
“कौन ?”
हालांकि वह अकेला रहता था ।

बरामदे का हरा लकड़ी का दरवाजा
खोलकर
किसी के बाहर निकलने की आहट हुई थी,
और उसने सहमी आवाज में पूछा था—
“कौन !”

वहाँ तो कौन था ?
बहने की तीन जन—
मानव तन, मानव मन,
और सनसन पवन ।

1980

सामान

मैं रोज सब सामान बाहर निकालकर
देखता हूँ—
कोई ऐसी चीज तो नहीं
जो घर बदलने में छूट गयी !

याद आती है
कई फालतू चीजें जिन्हें छोड़ आया था,
राहत थी ।
नये मकान में सामान लगाते हुए पाता हूँ
उही चीजों को दो-दो चार-चार की सख्या में
मैंने फिर जमा कर लिया है ।

मकान बदलने से
या चीजें छोड़ देने से
कभी नहीं छूटती
क्योंकि वह आदमी के अदर होती हैं—
जब खो जायें तो मिल जाती हैं,
जब पा जाओ तो खोती हैं ।

1980

शलभ

जिस दिये का मैं शलभ हूँ,
उसकी रोगनी हर झरोखे में है।

जहाँ वही ताँजे गोबर से लिपी बच्चों घरती पर
महावर से रंगे पाँव हैं,
वहाँ भी जहाँ पलका के साये में
याता के गाँव हैं !
और उन झरोखा में भी
जिनके पीछे सिफ मरे हुए सवेरे हैं,
और उन झरोखों में भी
जिनके पीछे सोये बूढ़े अंधेरे हैं।

जिस रोशनी में पसि फँके जा रहे हैं,
और जिसमें
सिक्के गिने जा रहे हैं,
जिस रोशनी को लगाकर ठेले निकलते हैं,
जगह-जगह जिसे जला भेले लगते हैं

मगर रोशनी हमेशा उसी दिये की है
जिसका मैं शलभ हूँ
मौत के पर्दों में छिपकर भी
जीवन में हर मन की धडकन में
सुलभ हूँ।

1981

उत्सव की प्रतीक्षा

अयि राजकन्ये,
जब तक तुम्हारे पण्य-पोत लीटेंगे,
रागिनियाँ वापस जा
तारो मे सो जायेंगी ।

दूर-दूर द्वीपा से
उत्सव के उपकरण
तुमने मँगाये हैं,
दुग के चारो ओर
शिविर लगवाये हैं ।

पाँत की पात अस्वो की
बँधी है प्रतियोगिता को—
समान पूरा मिलेगा
शास्त्राय, कविता को

किंतु उस दिन के आने तक
मैं न ठहर सकूंगा ।
जाने के पहले अपने हाथा से
दुग के द्वार पर
सेलखड़ी लेकर यह लिखूंगा—
“अतिरिक्त जिस देश में समान हो,
कौन फिर उस देश का मेहमान हो ।”

यह तो अपने हैं

सात छोटी चिड़िया, फूल जगल के बहुरंगी
अपने हैं ।

कविता का युग न रह चौद्विक्ता प्रधान हो,
बात का कहने की रीतियाँ बदल जायें,
मिल से निरुत्तना धुआँ गगन काला करे
आवर बरामद म बालती मँना के
गीत दाम्नीभरे
अपने हैं ।

गरमी म पहाडा पर चाहे न जा सवें,
छोटे से बमरे में उबलें पसीने में,
उम छोटी सिडकी से दिग्गते हुए सँमल के
लाल-नाल पूला से लदे बह कँटीले पेड
अपने हैं ।

प्रेम मिले या न मिल, नीरम एबात हो,
पानी भी देने का कोई पुरमानेहाल
अपना न मीत हो,
इधर-उधर होटेल की मेजा पर रखे हुए
मोट-मोटे गिलास पानी के
अपने हैं ।

1974

तरुओ-नीचे हँसनेवाली

तरुओ-नीचे हँसनेवाली

अब तक यह वन महक रहा है ।

सुरभित आचल लहराया था
जहाँ, वहाँ खिल रही मौलथी,
ऊष्ण पवन तन कम्पित करता,
रोम-रोम म घुलती मिथी ।

बिना बात के हँसनेवाली,

अब तक कानन चहक रहा है ।

लौट रहे रवि के रथ-चक्रा
के तुम चिह्न मिटाती, हँसती,
कभी धूप वन वन उजालती,
उमड मेह वन कभी बरसती ।

वन मधु-मेघ बरसनेवाली

अब तक जीवन बहक रहा है ।

चीर घूसरित सध्या का वन
उतर गयी उस ओर काल के ।
जाते-जाते मुझे दे गयी
कवण निज कर से निवाल के ।

अनछूए होठो की सुधि से

अब तक यह तन दहक रहा है ।

सगाई

पहाड़ों पर चढ़ने चढ़ते
तुम्हारा गजरा ढीना हो गया,
स्वेद से दमकता चेहरा है,
झाँटा पर समय का पहरा है ।

आँसु में मंदिर की सीढ़ियों के नीचे से
मेहँदी के पूल बाँध मामी हा
मेहँदी की पत्तियाँ स हथेलियाँ जलती हैं ।
मजा सभी आयेगा—
जब पलाश रगड़कर
तलवा में सलाई हो ।

देह बड़ी थकी है, भीतर अग्नि थकी है,
क्षण यह आ गया है—
तन की पुरोहित बना
आर्याभो की सगाई हो ।

1978

तकाजा

यह दरवाजा जिसे तुम हमेशा खुला देखते हो,
सदियों बाद रहा था

एक बार उसने जाने के लिए खोला था
जिससे मैंने कुछ देर और खूबने की जिद की थी,
फिर भी वह बल दी थी,
और उसके बाद से
दरवाजा यह खुला का खुला है ।

और मैं इसमें खड़ा हूँ—
मकान ढह गया है
पर दरवाजा खड़ा है,
जैसे वायदा भूल गया है,
पर उसे निभाने का
तकाजा खड़ा है ।

नागिन

इन गुजान वनो में नागिन
एक सुनहली रहती है।

बैठ चट्टान पर
सड़का गडरिये का भौत यह गाता है,
टूटी हुई मसजिद से
धमगादड उड़ जाता है

झूठी जपानी मुधि के चिघटो की पाटली
बाग में दबाये,
कभी-कभी आती है,
पाटली पर सिर रख
कभी सो भी जाती है।

मगर नींद से उठकर
मौन वह रोती है,
दूर के पहाडा में
जब प्रतिध्वनि होती है—

इन गुजान वनो में नागिन
एक सुनहली रहती है।

1979

चाभी

कड़ी धूप में सुनता,
लू की चीखें सुनता,
बरगद के पेड़ के
नीचे बने इस घर में आकर सुकून हुआ ।

दरवाजा खोलकर
कमरा-दर-कमरा जा,
अपने पुराने पहचाने मकान में
अपनी ही साँस सुनी

कपड़े सब उतार दिये
मिट्टी की काली नद के पानी से
नहाना शुरू किया,
सिहरन-सी उठते ही
गाना शुरू किया ।

सहसा याद आया—
दरवाजा खोलने के बाद
चाभी में उसी में लटकती छोड़ आया हूँ ।
सारे घर को पानी से भरते हुए
नये ही भागकर बाहर आया ।
और फिर याद आया—
वापस इस मकान में आने का
इसीलिए अधिकार मिला है
कि चाभी तो चुकी है !

गुलाब

कहने से भी क्या फायदा ?

कहेंगे भी तो मानेगा कौन
कि हमने भी एक बार
प्यार पाया था

एक गीत गाया था,
सिफ प्यार देनेवाले ने
सुना था,
और उस महफिल में
किसी को पता न था !

आज हमें कहना पडा—
जब तुमने कागज़ का एक गुलाब
दिखाकर दावा किया
अपने मन के उपवन से तोडा है,
और उसने कई दिन
तारो की छाँव में, सपनों के गाँव में
ओस पी,
सूरज से, तारो से रँग लिया है ।

माना यह गुलाब-सा हूबहू दिखता है,
इत्र गुलाब का इसमें बसा है,
बहुत दिन रहेगा, ताज़ा-सा दिखेगा
लेकिन किससे कह ?
हमने भी असली गुलाब देखा है !

1983

महफिल के बाद का सत

तुम्हारी सुराही गाली हा जाने पर
चार साग जाम भी सेवर चल गये ।
छूट गये मालीनो पर
कुछ गुलाबी पन्ने,
और ह्या म उदत
कुछ ममते, कुछ कुचते
वेला क फूल ।

तुम भी चार बडे भोले हो ।
महफिल का यही रिवाज है
जब तक धुपरू है,
तभी तब साज है,
फिर तो बुझते-बुझते
दिये हैं, ऊंची छत है,
सिमटी हुई चांदनी स डवा हुआ तखत है ।
और एक सत है—

'जानेमन मुबारक,
सिफ मुझे पता है
जिन अगूरो की शराब
तुमने सिफ अपने लिए छुपा कर रखी है,
वह मेरे बगीचे से
चुराए हुए हैं ।'

हेमन्त-पावस

रात दिन सवट के बादल गरजते हैं,
छन छन मे बिजली चमकती है,
भाँगन की तुलसी और नीम दरवाजे का
सुलग-सुलग उठते हैं ।

टुटे हुए घीरज के पुराने मकान पर
जगह-जगह टूटी है सुधियो की छाजन ।
किसको मालूम था हेमत के बीचोबीच
भरते हुए पीले पत्तों के बदले
होगा प्रलय-वपण ।

सपनों के मरघट मे
मरे हुए साहस का व्याघाम्बर पहने
किसी पगली भैरवी-सी
आशा है धूमती,
मदिरा पी त्रास की
डगमग भूमती ।

घर मे अँधियाला है, मचिया पर कविता की
शब्दों की गठरी को सिरहाने लगाकर
कवि निपट अकेला पडा है,
दुःख के भीगुरो से गुजित है सारा घर,
रातभर बोलते यह रहते हैं निरंतर,
और दरवाजे पर
एकाकीपन का बडा
ताला जडा है ।

1981

वे फिर आ रहे हैं, वे फिर आ रहे हैं
 शस्त्रा से लैस, लूटपाट करने
 लुटेरे समय की सेना के डाकू
 सैकड़ो-हज़ारा ले चमकते चाकू ।

फिर नदी पार करते हुए
 विदवास के घोड़े पर चढी जवानी
 को शफलत की नदी मे काट फेंक देने,
 वर्षा से घो देने तन के कागज़ पर लिखी
 सु-दरता—कविता,
 फिर झुलस देने फुर्तलि हाथो की
 तत्परता
 दिनो के घोड़ो पर सवार सबल सेना !
 व्यथ है कहना-सुनना, रोना या धोना ।

लो, वे जा रहे हैं, लो, वे जा रहे हैं—
 फेंक कर लूटा हुआ वालो का कालापन,
 अग-अग का यौवन,
 प्रेम की आस्था, विवशता, भोलापन,
 ऊँचे आदर्शों पर जिया मानव-जीवन,
 मोहित शहीदो का
 कल्पित स्वप्न-आलिंगन ।

देह की कारा

ऐसा लगा, अचानक घाटी
फूलों से लबरेज भर गयी ।

चलते-चलते रुकी अचानक
फूल उठाने पृथ्वी पर से,
पायजेब की सीत्वार से
लगा कि जैसे जलकण बरसे ।

चढते चढते गिरिमाला पर
सुरभि श्वास मे तेज भर गयी ।

लकड़क नीले आसमान मे
पर्दा हटा तनिक्-सा धन का
हमे देखने, राह दिखाने
शुक्र आ गया, बढी विकलता ।

क्या जाने क्या याद आ गया,
क्या इतनी बेकली बढ गयी ।

लौट घले हम वापस नीचे
रोते रोते, दिन उजला था,
प्रणय देह की कारा मे था,
भापा थामे हुआ गला था ।

हमे हवाले कर तारो के
दवे पाँव चल घुप घर गयी ।

1978

अरण्य-दृश्य

जगली करौंदे के जगल मे
शाम ने धूल पर चित्र कई बनाये,
कीमत अदा करने को
बबूल के पेडो ने
पीले फूल गिराये

दूर-दूर कही एक गूज-सी व्याप गयी,
पास-पास आती एक पगध्वनि सुनायी दी,
पाजैव पहने हुए किसी के सुकुमार चरण
महावर की लालिमा घास पर छोड गये ।

जगली बिल्ली मुह मे एक एक करके
बच्चे को उठाये
कही रख आती है,
कही रख आती है

सारा अरण्य वह मौन अपलक
यह देख रहा है, यह देख रहा है ।

आओ, खोदें जमीन

महा से कही भी पहुँचने की
कोई सड़क नहीं है।

सब सड़कें निकलकर अपनी ही परिक्रमा
करके फिर लौट-लौट यही पर आती हैं,
यह वह स्थान है
जहाँ से कही भी जाया नहीं जा सकता।

और यहाँ कीचड़ है,
बैठने का न सुभीता है,
पेड़ या पहाड़ यहाँ कुछ भी तो नहीं है,
मैदान रीता है।

आओ, खोदें जमीन—
पृथ्वी से कटने पर,
हम अगम्य अनजाने पाताल खोजेंगे।
भीतर ही भीतर जा
बाहर के पथों को
घात देखें समझेंगे।

अतृप्त वासना

शाम को
शहर के बाग के लॉन पर
किसी छोटे बालक का
लाल एक छोटा जूता पड़ा है,
नया है, सुन्दर है,
किंतु उसे देखकर व्यग्र मन होता है ।

दैनिक जीवन के
वन के पीछे
छूटे शादल-पथ पर
इसी लाल जूते-सी
यौवन की रगीन वासना पड़ी है,
और आगे आ उसे
गलत-गलत जगहा पर
अतृप्ति ढूढ रही है ।

बकवास का अन्त

बात घूमफिर कर
तुम्ही पर आ गयी ।

बिद्या, यश, अध्ययन,
थोडा पडता वेतन ।
किस किस होटल का
स्वादिष्ट है भोजन ।
रखी रिश्तेदारों से
टूटती आशाएँ ।
सविधान मे स्वीकृत
कितनी हैं भापाएँ ।
नौकर की दुलभता
प्राति की आवश्यकता,
ट्राफिक जाम शाम का ।
शिक्षा की साधकता ।
अधिकार नारी के,
बलाकारों के प्रणय ।
नष्ट आदर्श सब,
भ्रष्ट सब मन्त्रालय ।
बातें सब करता रहा
ध्यान तुम्हारा रहा—

बात घूमफिर कर
तुम्ही पर आ गयी ।

1974

उस्ताद के प्रति

हीरा हमारा सही, बाट आपकी है ।

हम गँवई मवई बोने चले थे,
धूल में नगेपाँव भुने थे, धूप में जले थे—
हल की लकीरा से हीरे ऊपर आये,
आपने पहचाने,
गाँव का सँवार किसान
हीरे को क्या जाने !
आपने जमाकर हीरे, उनको तराश दिया,
मानो जड पत्थर को चेतन प्रवाश दिया ।

ईंट-ईंट लाकर हमने मंदिर खड़ा कर दिया,
देवता की मूर्ति को पधराया,
लाल-लाल कनेर का बागीचा लगाया,
पानी का कुण्ड बना
निमल स्वच्छ पानी से उसको भरवाया ।
लेकिन उस मंदिर तक पहुँचने के रास्ते,
साधारण लोगो की पूजा के वास्ते,
बनाना न हमे आया ।

आपने खेत के बीच से राह को निकाल दिया,
बाटकर चट्टानों रास्ता उजाल दिया,
बोग आने लग भजन गाने लगे ।
मंदिर बनाया हमने, बाट आपकी है ।
हीरा हमारा सही, बाट आपकी है ।

1981

कैफियत

देवताओं की मूर्तियों को पसीना आने लगा है,
और मदान में पाच खजूरो के बीच
खड़ी सफेद मसजिद में
रात को किमी औलिया की
रूह रोती है ।

चौराहों पर खड़ी गायें
चुपचाप आँसू बहाती रहती हैं,
सूखे हुए फव्वारों पर बँठी
चीलें चिल्लाती रहती हैं ।

आदमी अहंकार को
आत्म-विश्वास कहने लगा है,
अपने पुरखों की नृशंखता को
इतिहास कहने लगा है,
सशक्त शत्रु द्वारा किया अपमान सहनशीलता कह सहेता है,
बड़े गव से निबल मित्र का कर सस्नेह गहेता है,
क्रांति के नाम पर राजा को भार कर
राजा के महल में
राजा की रानी के साथ अब रहता है ।

1981

तपण

फूल जिसने लगाया, वह तो उसे भूल गया,
फूल तो लग ही गया, ऊपर उठता गया,
रगा में वेग था, गंध में आकाश था,
फिर भी धामे रखने का दायित्व पृथ्वी का था,

पृथ्वी

जो उस फूल को नीचे से देख सकती थी,
आंधी उसे खींचती तो धामे रख सकती थी,
लेकिन सुगंध पर तो हवा का अधिकार था ।

पांखुरियाँ झर गयीं, पावन आ चने गये,
बाद में दोबारा फूल नहीं उगा,
गंध की अम्यस्त हवा पेड़ को हिलाती रही,
पृथ्वी पर धैर्य से केवल मुस्कुराती रही ।

पृथ्वी

जड़ों से जल खींचकर मरे हुए पुष्प का तपण करती है,
कभी-कभी शाम को फूल की याद में
चांद और सूरज को किरनों वहाँ मिलती हैं ।

कछुआ और हिरन

तुमने जितना देखा, वस उतना ही जाना ।

इस पहाड़ के पीछे भी
शृंखला है कई पहाड़ों की ।
इस ताल में एक ऐसा कछुआ है
जो अपने अण्डों की तरह ही
बूल पर दूर रखे गीतों की रखवाली
ताल के बीच से करता है ।

वरुणा की कछुई जो गीत रख गयी है—
गीत जिनमें मौन में बन्द शब्द होता है,
शब्द जो मौन-गम पार किये बिना
जन्म ले लेते हैं,
गीत जो स्वर की एक भंगिमा मात्र होते हैं ।

जो भृगु तुम्हारा बाण हृदय में धूसा हुआ
लेकर भाग गया है
इस पहाड़ के पीछे,
वही जब चिरन्तन अपने मित्र कछुए से
मिलने को लौटेगा,
बाण तुम अपना वापस निकाल लेना,
भृगु कुछ न कहेगा ।

1977

बीते मिलन

यवन के सम्ये मैदान में
हमारे बीते मिलन
खाली गिलासों की तरह
पड़े रह गये हैं ।

गिलास,
जिन पर शब्दों की उँगलियों के निशान हैं,
शब्द जिनसे हमने निगाहों का धामवर
इसारे को पिया था ।

बूढ़ा चिड़चिड़ा बाल
ठोकर से कई बार
वह गिलास उठा गया,
माना वह चिटख गये
लेकिन बिखरे नहीं,

जगह से बेजगह हुए
लेकिन टूटे नहीं ।

वल्मीक

जहाँ भी वल्मीक देखता हूँ,
नमस्कार करता हूँ ।

हो सकता है वाल्मीकि हो अदर,
या मिट्टी जम गयी हो
ध्ववन श्रृषि के ऊपर,
याकि सिफ चीटिया का
हो वह एक शहर

मगर
वहाँ सृजन है ।

मिट्टी जहाँ भी है
उसे मेरा नमन है ।

1978

वसन्त

वसन्त फिर आ गया,
जैसे कोई भीतर की खिड़की खोल
बाहर का दरवाजा लगा गया ।

जैसे कोई धुले हुए सफेद टेबिल-बलाय पर
सरसो के फूलों का गुच्छा रख
वही विसी बपाट के पीछे छिप गया,
जैसे यह बताने कि वह फिर आ गया
मकान की चहारदीवारी पर
पीला बनफूल एक
नारा लगाने लगा हाथ हिला हिला कर ।

कोकिला बोली नहीं,
आये वसन्त को चार घण्टे हो गये ।
हवा महकी नहीं
बहुत देर भूल-भूल
आम्र मुकुल सो गये ।

फिर भी दिखती है धूप यह सुनहरी
पेड़ सब बसती, मकान बसती,
उड़ते पछियो की पीली-पीली पाँखें—
इनमें ही छिपी हैं
मौत के पहले पीलिया से पीली
मा की गोली आँखें ।

स्मृतियों के दृश्य

कौन कहता है कि मौत खामोश होती है ।
बल खाती हर लपट चिता में लहराती है,
चिंगारी इतराकर ऊपर उड़ जाती है,
हर लकड़ी ठहर-ठहर
जैसे अपने पँजों की उँगलियाँ
चटखाती है ।

मनुष्य का कृतित्व खामोश होता है—
शाम को मायूस जाते सड़क पर
किसी एकाकी वृद्ध को किया हुआ नमस्कार,
देकर न माँगा हुआ
किसी मित्र को उधार,
किसी को देख विवश खिसियाना
आँखों ही आँखों में जताया सजल प्यार,
धमकी देते हुए गिरोह पर,
उठाया पास जो भी मिला
हथियार

दृश्य यह
मौत के कई साल बाद भी
पुकार लगाते हैं,
जो बहुत काल पूर्व नभ में घुआँ बनकर
उड़ गया,
उसकी याद दिलाते हैं ।

1981

हे प्रभु

हे प्रभु,
मुझे ऐसे सावधान लोगों से बचाओ,
जो पहाट पर चढ़ने के पहले ही
मलहम और पट्टियाँ भोले भ लेकर चलते हैं,
उासे भी
जो इतने शापिल हैं
कि बातचीत में छोये ऊँचाई से पिगलते हैं ।

हे प्रभु
मुझे ऐसे कमजोर दिलों से बचाओ,
जिन्हें बहुत ऊँचाई से
नीचे देखने पर चक्कर आता है,
उन महत्वाकांक्षियों से भी
जिनको हर चीटी पर चढ़ा हुआ आदमी
चुनौती देता नज़र आता है ।

हे प्रभु, मुझे ऐसे समझदार लोगों से बचाओ
जो बहुत विचार कर हर काम करते हैं,
ऐसे अदूरदर्शी मूर्खों से भी
जो बिना सोचे-समझे कुछ भी बाल पढ़ते हैं ।

राजमार्ग पर जो चलें, मैं न उनके साथ चलूँ,
अनजान बयाबान रास्ते पकड़कर
पुराने सहर पार कर
नये सहरों में निक्लूँ ।

सूरज का रजिस्टर

वह एक सुबह थी
जब मुझे देखा-अनदेखा बर
तुम चली गयी थी

इस बीच माली की झारी से
भीमे कितने भ्रमर,
घास में गिर गये ।
शिशिर की दोपहर को
उड़ती हुई हुई-से
बादल घिर गये ।

रात लौट आयी है,
तुम भी फिर वापस आ ऐसे बैठ गयी हो,
जैसे सुबह दोपहर
जि-होने जीवन को सीसे-सा पिघलाकर
दिया है तबरेज भर,
सुबह दोपहर नहीं
सिफ बूढ़े सूरज का
है हाजिरी का रजिस्टर

1978

जलयात्रा का अन्त

मुटपुटा होते-होते
नदी पार हो गयी,
सोये हुए बालक को कंधे पर उठाकर
यात्री नाव से भूमि पर कूद आया ।

लेकिन इस त्रिया में
बालक का एक जूता
ढीला खुले बाद का
तेज प्रवाह में गिरा, तुरत धारा बहा ले गयी,
नीद ही नीद में
बालक बड़बड़ाया ।

लेकिन उस जूते को धारा वहाँ ले गयी,
जहाँ एक जूता पहन
दूसरे पाँव के जूते की प्रतीक्षा में
अगणित शैशव बैठे
उदास रो रहे थे ।

ज्यादा मत ठहरना

जिस गुसलखाने से
भम्म-भम्म नहाने की आवाज आ रही है,
वह इस महल के
भीतर ही भीतर कहीं
दूर सिरे पर होगा ।

देह की सुगंध तुम्हें भीतर ले जायगी,
गिरते पानी की ध्वनि पुकार लगायेगी,
शायद भीगी-भीगी
किसी नारी-बूँठ के गुनगुन-गुनगुन
गाने की भीठी ध्वनि आयेगी ।

ज्यादा मत ठहरना

बाद गुसलखाने की
चौखट पर पीला एक गुलाब ताजा रख,
फिर अपनी
आगे की यात्रा पर चल देना ।

1978

गिरपतार राजा का महल

बाँसों के सुनहले वन में
ऊँचाई पर बने महल के
दरवाजे हवाओं में खुलते टकराते हैं,
बुज पर बैठे झुड़कूतरो के
फुर से उड़ जाते हैं ।

महल उजाड़ पड़ा है,
फानूस हवाओं में झूलते हैं,
सारे महल की रोशनीमा बल रही है,
दूर भसेँ चर रही हैं ।

राजा को और उसके कुटुम्ब को
पकड़ लिया गया है,
जंगल के लोगों को खड़ा कर वतार में
वह कम्वल बाँट रहा था,
दान-पुन राजा ही करते हैं ।

आखिरी कम्वल बचा था, लाइन लम्बी थी,
तभी एक बूढ़े ने भागकर
राजा के हाथ से कम्वल झपट लिया था ।
राजा ने तलवार निकाल हाथ काट दिये थे—
ऐसी तौहीन कहीं
राजा बर्दाश्त करते हैं ।

मुचुकुन्द

जिस दिन पुरानी उजड़ी मसजिद की मीनार से
अज्ञान की आवाज उठी
और शहर में फैल गयी,
उस दिन हर आदमी को यह गलतफहमी हुई
कि वह मेरी आवाज है,
क्याकि गर्मी की दोपहरी में
उहोने मसजिद के दालान में
मुझे सोता देखा था ।

मैं कभी आवाज नहीं लगाता,
किसी को नहीं बुलाता,
जमीन पर मत्था नहीं टेकता,
अपने सबाब नहीं सहेजता ।

मैं तो मुचुकुन्द की तरह
सिर्फ सोने की जगह ढूँढता हूँ—
गुफा में, मन्दिर में, मसजिद में, गिरजे में ।
क्योंकि मुझे जगानेवाले का इत्तजार है
और जब तक मैं साँझगा नहीं
वह मुझे जगायेगा कैसे ?
मगर हर जगह इतना शोर है कि मैं सो नहीं पाता
और जगानेवाला मेरे सोने के इत्तजार में
कहीं छुपा बैठा है ।

1980

ऊहापोह

एक जमाना गुजर गया
फिसी हसीन नजारे को नहीं देखा—

यह नहीं
कि मेहराबदार चम्पई पाँवों के ताल नाखून
नहीं देखे,
यह नहीं
कि घौली बिल्ली दोपहर को सहन पार करके
निकली नहीं हलके से,
यह नहीं कि बच्चों ने फूलों से झोलियाँ नहीं भरी,
यह नहीं कि बारिश के बाद
जामुन के पेड़ से बयारों नहीं गुजरी,
यह नहीं कि मेघ नहीं घुमडे,
और यहाँ तक कि
बस की खिडकी के पास बाल तुम्हारे उडे

मगर
मैं जिस दृश्य को खोजता हूँ
वह कौन-सा है समझ नहीं पाता हूँ—
वही भी मुग्ध हो अब ठहर नहीं पाता हूँ ।

भूलभुलैया

मुझे मालूम नहीं
कि उस महल की भूलभुलैया में
मैंने अपने को कैसे पाया ।

पहले मैंने आगन के फकार दखे
जो भीतर से आलोकित थे,
फिर बैठ गया
छत पर जाती हुई सीढ़ियों के पास,
जहाँ पलकहीन नयनों से एकटक
इतिहास सीढ़ी पर बैठा
मुझे देख रहा था,
मैं उल्टा चलने लगा,
बहुत डरने लगा,
बाहर निकलने का मार्ग नहीं पाया,
मन ही मन मैंने अपना नाम दोहराया ।

एक कमरे में मोटी मोटी किताबें भरी पडी थी,
एक तोता बैठा था, उन पर जो खुली थी ।
वही मैं बैठ गया,
तोते ने उड़कर रास्ता बताया,
मैं बाहर आया,
वही से एक बहुत बड़े काले बादल ने
महल को ढक लिया, छुपाया,
पाया बाहर कुछ लोग बहस कर रहे हैं,
महल के लोग से भरा वह नगर है—
सड़कें सुनसान हैं
चौराहों पर चहल पहल है ।

जो भागेगा बच जायेगा

साम का मुँह बन्द होने पर
जो अपने गिरि म नही सौटते,
जल्द ही नही कि ये घोरगति को प्राप्त हुए हो,
हो सकता है बुढ़िमान हा
पुपके से भाग लट्टे हुए हा ।

दपतर बन्द होने पर जो घर नही सौटते,
फरती नही है कि वह सापता हो गये हो,
या पत्नी बन गये हो,
हो सकता है वह बुढ़िमान हा
किसी रईस विधवा के साथ
रहने लगे हा ।

पति की गालियाँ खा, चील-मुक्कान मुन
पत्नी गृहस्थी के प्रति दुर्लक्ष्य हो
यह नही जरूरी है,
मन ही मन पति की ऐसी-तैसी करके
सायद वह मान चुको मन ही मन दूरी है ।

कभी शीशी टूट जाती है, कभी ढक्कन खो जाता है,
कभी वह बच्चे का खेल हो जाता है,
कभी बाल का बवाही
मोली में डाल उसे
टेढ़ी-मेढ़ी गलियो म विगत की खा जाता है ।

1981

राममणि की याद

गाँव के घाट पर
टूटी फूटी हुई तीन चार सीढियाँ,
और दूर क्षितिज पर
पेठ एक इमली का ।

नववधू बन आयी है
चार-पाँच दिन पहले
रजकिनि बटोरी-सी बजरारी आँखें ले,
पीट पीट पत्थर पर
बस्त्र धो रही है ।

घाय है रजकिनि यह ।
याद इसे देख कर राममणि आती है ।
पाँच सदा गगा मे,
हाथ प्रवाह की गति से खेलते ।
बस्त्र धो रही है
बाँध लिया है गटठर ।

बली घर
आँचल से ऊपर के अघर के
सीकर-वण पोछ कर,
निभय निर्जन नितात अपने घर लौटते,
पीला बँजयती का फूल हो अनमने
ढीले-झीले जूड़े मे
मुदित खोस कर अपने ।

1981

याचना

हे रजनि, अभिनव राममणि !
देह बे गाँव-गाँव पार कर
आया हूँ आज मैं
दो क्षण को चण्डिदास का शरीर माँग कर ।

देह बे गाव मे
चेतना की सुस्फटिक शिलाओ से घिरा हुआ,
स्वच्छ मुकुर नीर का फँसा है ठहरा हुआ,
सुधियो का मधुर जल उसमे है भरा हुआ ।

वस्त्र धो प्रदोषा को
गंगा से गागर भर जब तुम लौटोगी,
चण्डिदास की मुद्रा मे किसी तरहले
मुझे खडा देखोगी ।
नीचा मुख कर जैसे निचल जाना चाहोगी,
खडे-खडे तलवे मे गढे ककर को
हाथ से पाँव झाड सहलाना चाहोगी

किंतु एक चुस्लू भर
गंगा का द्रवित गीत
क्या तुम मेरी
धजलि मे डालोगी ?

अनिश्चित

जाने का समय तो
आया और निवृत्त गया ।

नयनो ही नयनो मे
दूर जाता प्रवाह मौन निहारता रहा,
सकल्प विवल्प मे जीवन हारता रहा,
और कुछ-न कुछ कहकर,
घुप रहकर सब सहकर,
बालक-सा बहल गया ।

बार-बार तुम आयी,
बार-बार पुकारा,
बार-बार आग्रह से
कहा—'छोड़ किनारा !
अन्तिम बार कहती हूँ
न कहूँगी दुबारा !'
सोचता विचारता मन ही मन हारता
देखता मैं रह गया
मानव-तन की बारा !

हे गये,
अनिश्चित खड़ा-खड़ा
अनछुआ प्रवाह से
मैं शिला मे बदल गया ।

1981

शेष सब हुआ है

मेढा की पत्तियाँ ताँबिया हो चली हैं,
एप्रिल नुवरड पर है ।

धुले धरामदे के शेष गचित नीर पर
गौरम्ये आती हैं,
वातायन मोहन पर सफेद घादर पर
छाटी छाटी इमली की
पत्तियाँ उड आती हैं ।

दूर वहीं रेल के जाने की आवाज है,
और खाली कमरे में
गूँजता है सनाटा ।
एकाएक द्वार पर कभी तीसरे पहर को
सहजन की फूललदी डाली-सी
अब तुम न दिखोगी ।

दूर कही तुम होगी ।

शेष सब हुआ है ।

नीले आकाश में बादल सफेद देख
नीर से निमज्जित नयन
आँचल से पोछागी ।

छावनी

दूर छावनी थी—

बीच में सड़क के दोनों ओर
घनी-घनी अमलताश-वनी थी ।

सोनहरी आभा से पथ उफन रहा था,
सोने का चूण जैसे तरु से छन रहा था,

दूर पहाड़ी पर

घूने से पुनी एव रेञ्जीडेन्सी क्लब की सफेद
इमारत थी,
अंग्रेजी सगीत पियानो पर बजता था
तो सोने की घटियाँ ब्रयारो में नाचती थी ।
नीचे मुझे खड़ा देख
मेरा स्तिर चूमती थी ।

सगीत यो लगता था

जैसे सारा पश्चिम
पूर के अनागत सुनहले युग की
अगवानी करता है,
इस उबर मिट्टी की सलामी करता है ।

1981

भोर का तारा

अब सितारे घर जा रहे हैं ।

ओस से गतनिशि के छोटे पदचिह्न धो,
विसर्जित सभा की स्मृति भर तनिक रो,
अपनी ही आँखा देख चाँद का डूबना,
बहते हुए काल का बहने से ऊबना,
रातभर छाया कर
बैठे डोर-डगर पर,
धीरे-धीरे उतर सितारे घर जा रहे हैं ।

साथी, सब एक-एक करके चले गये,
मगर शुक्र अपने पाव घसीट कर न जा सका,
पृथ्वी पर कहीं दूर किसी गवाक्ष से
कोई उसे देखकर रात जागता रहा ।
उसको भरमाने को देर से आया वह
और बिना नीचे देखे चलता रहा,
मगर नयन लगे थे, प्रतीक्षा में जगे थे,
जाऊँ या रह जाऊँ इसी ऊहापोह में
सूरज निकलने तक शुक्र जलता रहा ।

कवियों के घर

खिड़की से कमरे में फूटती
तीसरे पहर की भीठी रोशनी में
एकाकी कुर्सी की छाया लम्बी होकर
कमरे में पड़ी है।

कितने कमरों में कितने द्वार रोशनी
ऐसे पड़ी होगी,
चंचला कविता लिखते हुए कवियों के
पीछे खड़ी रही होगी,
वही सब, जिनकी पाण्डुलिपिया
मेढ़ी पर पड़ी होगी।

इन ही कवियों के घर में समझदार नयी
पीढ़ी आ गयी है—
उपयोगी काम अधिक करती है
कविता के स्थान पर,
और उन घरों में अब अंग्रेजी संगीत बजता है,
पार्टी के बाद कवि का पोता विशोर
मोटर की चाभियाँ खोजता है।

फिर भी बाहर खिले सुन्दर गुलमोहर की
शोभा कौन धामेगा ?
खिलना कौन रोकेगा ?

1981

भीम

सबका अपने भाजन का कुछ भाग
भीम को देना चाहिए,
बाँधे पर कुत्ती को उठाकर वह चलेंगे ।
सकट आ जाने पर
सबकी रक्षा करेंगे ।

नितु प्यास भीम की न पानी से बुझेगी,
दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी
एक घड़ी ऐसी भी आयेगी,
जब वह पानी का स्तम्भित करेगी ।

रिपु की उर से
उष्ण रक्त पियेगी ।
क्षत्रिय की प्यास तो मुक्त अपमान के
प्रतिकार से बुझेगी ।

द्रौपदी जब केश अपने गूथेगी,
उसी प्यास की तृप्ति
मन्दार-वेणी बन,
वृष्णा के वृष्ण केश
सुशोभित करेगी ।

मरुवाला

एक चुल्लू पानी पीने को
हाथ का प्याला बना
अधरो से लगाया,
पर तुमने पानी देना ही धाम लिया ।

ऊपर तुमको देखा
तुमने नीर डालना आरम्भ किया,
मेरी अँगुलियों के
बीच-बीच से होकर
नीर सब पृथ्वी पर बह गया ।

अनजाने हाथ मेरा हाथ से तुम्हारे
छू गया,
तुम्हारे हाथ से सुराही छूट गयी,
पानी सब बह गया, सुराही टूट गयी ।

घाप अमर तृष्णा का
देकर मरुवालिके,
यात्रियों के यूँ के सग
तुम चली गयी ।

1981

गगा की खोज

आज घर लौटना था,
घर नहीं लौट सका,
यह भी नहीं याद रहा,
कब घर से निकला था ।
यह भी नहीं याद रहा
कब कहा चला था ।

हर गली अपरिचित थी,
हर नगर सुनसान था,
केवल दूर क्षितिज से
कलकल कलकल कलकल
आता गभीर धीरे
गगा का गान था ।

गगा की खोज में
क्षितिज को चलने लगा,
सूय उष्णतर होकर
शिर पर जलने लगा,
क्षितिज पीठ पीछे हुआ
केवल अनन्त नभ
नीलिमा असीम में
फँस छलने लगा ।

लौट जा

फिर भी मुझे जाना है ।

माता या पिता का नाम नहीं याद है,
परिचित किसी भाषा में न सम्भव सयाद है,
न कोई उत्तेजना है, न कोई प्रमाद है,
केवल यह विदित है
मेघों की चार घड़ी चिकनी जो छाँव है
यह एक पहाव है ।

राह के नाम पर धूप को रोकता
सघन कान्तार है,
औ' पथ दिखाने को
चक्रमण करती
वायु की चीत्कार है,
वापस लौट जाने की
सरन्तर की मनुहार है ।
फिर भी दूर प्रवाहित
एक जलघार है,
जिसमें निस्सीम उज्ज्वल जल का विस्तार है
जिसकी यह बार-बार
आती पुकार है—

अभी भी लौट जा,
पथिक वापस लौट जा ।

1981

पत्थर की नाव

एक नाव होती है पत्थर की,
वह डूबने के लिए ही होती है ।

उसके नीचे समुद्र भी होता है
पर वह शान्त होता है,
क्याकि उसमें सदा तूफान होता है ।

उसमें लोग सदैव ही यात्रा पर रहते हैं,
जहाँ से चलते हैं, वही से गुजरते हैं,
वही पहुँचते हैं ।

लकड़ी की नावों में बैठकर
लोग पत्थर की नाव देखने आते हैं
और गुन माते हैं

उस मूर्तिकार का जिसने इसे बनाया,
पत्थर को लकड़ी किया,
बदल दिया,
मानव किया ।

तपस्वी

महाराज,
अब समुद्र गुफा तक आ गया है ।

बाने दो,
सींगवाली मछली की प्रतीक्षा है,
जिनके सींग म नौका को बांधकर
मनु ने जय पायी थी प्रलय पर ।

महाराज,
अब आधी गुफा समुद्र में डूब गयी है ।
डूबने दो,
जब ज्वार उतरेगा,
मेरा बमडलु इस जल से भरा होगा ।

और पुत्र वधु का
मन्नाभिपिक्त होने करबद्ध खड़ा होगा ।

1983

देखते नहीं हो ?

देखते नहीं हो ?

उसके हाथ
निरंतर नमन में
नहीं जुड़े हैं,
पक्षाघात से मुड़े हैं !

देखते नहीं हो ?
वह तुम्हें प्रणाम नहीं कर सक्ता,
उसके हाथ कटे हैं ।

देखते नहीं हो ?
नमन के उत्तर में तुम्हारा अहंकार
ऊपर उठने के बदले झुका जा रहा है,
विनय के गौरव से भाल नवा रहा है !
नमन न करनेवाले पर
तुम्हें क्रोध आ रहा है ।

जलमग्न

वह जो बोलता ही जा रहा है,
वह जो निरंतर सिर हिला रहा है,
वह जिसके नयन बात-बात
पर हैं छलछल,
वह जो तत्परता से देता है
हर काम में दखल ।

वह जो अकेलेपन से घबराता
बेसुरा गाता है,
वह जो सगीत में अपने-मराये
सभी भूल जाता है ।

वह जो सदा हँसता ही रहता है,
जिसके मुख पर सदा गभीरता है ।

सब दिन से हारे हैं,
अपने चुने हुए पात्र के
अभिनय में मग्न हैं ।
ज-मजात विवृतियाँ,
विगत अनुभूतियाँ,
किसी प्राचीन नगर की सड़को,
इमारतो-सी
उनके मन के अथाह
सागर में मग्न हैं ।

1933

सीढियाँ और बालक

पहाड को काटकर
बनी है सीढियाँ,
चढकर उतर गयी
पीढियो पर पीढिया ।

सुविधा है,
भय नहीं फिसलने का,
कम है थकान भी
चढने-उतरने का ।

मगर एक बालक है
पसीना-पसीना जब ऊपर
पहुँच जाता है,
ऊपर से नीचे
अपनी गेंद लुडकाता है ।

और फिर सीढियाँ छोडकर
गेंद लेने
गिरता-पडता फिसलता,
घुटनो पर से छिलता,
नीचे आता है,

फिर ऊपर जाता है,
जब तक न ऊब जाये
यह श्रम दोहराता है ।

वोट-बलब की एक घटना

तसवीर खिचवाने को
घास और बाँस की ढोगी पर
हाथ म बाँस साधे
कमर मे लुगी बाँधे
भाई साहब मुस्कुराये,
ढोगी को ले चले धारा मे बहाये ।

फोटो खिच जाने पर
मछुवे की ढोगी वापिस की,
बशीश दी ।

और वोट-बलब मे आ
आयरिश कॉफी पी—
विलियम वड्ड सवध की एक बबिता पढी
'लेट नेचर बी युअर टीचर !'

मगर यह न बताया
उनके पिता थे प्रोफेसर,
तीन सौ रूपये महीने पर
पढाते थे
इंग्लिश लिटरेचर ।

अशोक-तले विनोद

विनोद ही विनोद मे
मेरे अनुनय पर
तुमने अशोक-वृक्ष पर
पदाभात बिया ।
वृक्ष वह तुम्हारे लाल-साल महावर के
रंगो को चुरा
फूले फूलो से भर गया ।

पहले हम चकित हुए,
थोडा विभ्रमित हुए,
दोनो फिर हँसने लगे
पेट अपने पकडकर ।
आगे गये हुए कैमरा लटकाये
पति ने तुम्हारे देखा मुडकर—
हमे एक दूसरे को देख हँसते हुए
गये शका से भर ।

और उहें यह लगा,
हम उही पर हँस रहे हैं ।

बोले गभीरता से—
'रात हो जायेगी ।
खी-खी हँसना छोड आप
चलें वदम तेज कर ।

नौका पर वेणु-वादन

तुम्हारे आरोह-अवरोह पर
नदी की तरंगें चली
नीचे गिर, उठ ऊपर ।

फँली है चाँदनी,
पीछे छूट रहे तट के बासों के सघन वन,
मेरा सिर गोद में है तुम्हारे
और तुम कर रही
वेणु-वादन ।

शिशिर का जो पवन सौरभ से भरा है,
वही पवन श्वास से वशी में गया है,
उसमें कुछ सुरभि पके बेरों की भरी है
तुम्हारी श्वास की,
इस सबसे बेखबर जा रही तरी है ।

एक कपोत घबल
जो बैठा अकेला है पाल पर,
उसकी कपोती उसे
चादनी में डूब रही होगी डाल-डाल पर ।

1963

मेहदी का स्वप्न

आओ, इग जामुनी हथेली पर
काली मेहदी लगा दू ।

पहले एक तोरण
आम्र-मल्लवो का बनाऊँ,
और उसवे नीचे
कलश एक सजाऊँ,
और उस कलश पर
रख मृदुल आम्रदल,
रखू एक नारियल ।

हथेली मे बन्द एक
स्वप्न कर सकोगी,
जो इस जीवन मे कभी
होगा साकार नहीं ।

यह भी थोडे़ दिनो मे
धीरे धीरे धीरे
मद-मद होता-होता
मिट जायेगा ।
भगर मन बार-बार
इसे बनायेगा ।

केवल तुमने

केवल तुमने मेरे
पौरुष का समयन किया ।

अहंकार की क्षयारी मेहदी की
जिससे व्यक्तित्व का उपवन सुरक्षित था
उसे बहुत बड़ा देख
विनोद ही विनोद मे सवार दिया ।
मेरी प्रभविष्णुता
के आग नतदृग होकर
आँखो ही आँखा मे मुझे उतार लिया ।
अनुगामिनि होने का थोडा सन्देह हो
इतना ही बस पीछे मेरे चली,
बिना कुछ बोले ही
झुक वीगनविलिया की मुकुलित डाली-सी
चेतना के द्वार पर तुम कमान बन गयी ।
थककर जब बैठ गया
स्वप्न की उपत्यका मे,
सुरधनु बन तन गयी ।

1981

मेरा क्रोध और तुम

मेरे बहुत क्रोध करने पर
तुम जैसे सम्मोहित हँसती चली जाती थी ।

सड़क पर, बाजार में
भीड़भरे रास्तों पर
कभी मैं बिगड़ता था
बोलता था चिल्लाकर,
सम्मोहित आँखों से
तुम ऐसे देखती थी,
जैसे मैं क्रोध में
सगता हूँ बहुत सुंदर,
क्रोध एक विनोद है
और हम परिहास कर रहे हैं
—लोग जमा होते थे,
फिर चल देते थे,
एक-दूसरे को
हँसकर देखते थे,

और फिर जाने कब, दृष्टियाँ मिलती थी,
मैं भी हँस पड़ता था,
मन के साथ देहों की
निकटता बढ़ती थी ।

तुम्हारा चेहरा

जब तुम्हारा चेहरा

सामने आता है,

धूप उसपर पड रही होती है ।

बाल तुम्हारे बसे होने पर भी

इधर से, उधर से निकलकर

हवा में उड रहे होते हैं,

आँखों ही आँखों में बात अनबही होती है ।

शब्द श्वेत कपोलों-से

पहाड की तराई में खडे दुर्ग से

दूर नीलाकाश में फुर से

विलीन हो जाते हैं ।

आँखा ही आँखों में केवल सामीप्य-सुख

की हँसी होती है ।

दृष्टि स्थिर होती है—

पुतलियों की भ्रमरियाँ

महुवे के कुडों में

निश्चल पडी होती हैं ।

1983

मेरा क्रोध और तुम

मेरे बहुत त्रोध करने पर
तुम जैसे सम्मोहित हँसती चली जाती थी ।

सडक पर, बाजार मे
भीडभरे रास्तो पर
वभी मैं विगडता था
बोलता था चिल्लाकर,
सम्मोहित आँखो से
तुम ऐसे देखती थी,
जैसे मैं त्रोध में
लगता हूँ बहुत सुंदर,
क्रोध एक विनोद है
और हम परिहास कर रहे हैं
—लोग जमा होते थे,
फिर चल देते थे,
एक-दूसरे को
हँसकर देखते थे,

और फिर जाने कब, दृष्टियाँ मिलती थी,
मैं भी हँस पडता था,
मन के साथ देहो की
निकटता बढती थी ।

तुम्हारा चेहरा

जब तुम्हारा चेहरा

सामने आता है,

धूप उसपर पड रही होती है ।

बाल तुम्हारे बसे होने पर भी

इधर से, उधर से निकलकर

हवा मे उड रहे होते हैं,

आँखो ही आँखो मे बात अनकही होती है ।

शब्द श्वेत वपोती-से

पहाड की तराई मे खडे दुर्ग से

दूर नीलाकाश मे फुर से

विलीन हो जाते हैं ।

आँखों ही आँखों मे केवल सामीप्य-सुख

की हँसी होती है ।

दृष्टि स्थिर होती है—

पुतलियो की अमरियाँ

मट्टवे के कुडो मे

निश्चल पडी होती हैं ।

1983

अनिमत्तित

मैं हमेशा शलत ववत पर पहुँचता हूँ ।

सुबह सुबह निबल कर भी पहुँचते पहुँचते
दुपहर हो जाती है,
मेज़बान के घर राजा आया हुआ होता है,
एक बड़ा जनसमूह खड़ा हुआ होता है,
या बहुत लोगो की दावत होती है,
मेरे पहुँचने तक मेहमान आने शुरू होते हैं,
या खाना बाना खा मेज़बान सो जाता है,
भीड, धूमधाम देख फाटक पर रुकता हूँ ।

या फिर जुलूस से सडक बंद होती है
और अटक जाता हूँ,
या फिर अपनी फटेहाल हालत से
किसी को खटक जाता हूँ ।
खिसियाना होता हूँ,
उँगलियाँ चटखाता हूँ,
बिला वजह बोलता हूँ, जाने-अनजाने सबको
नमस्कार करता हूँ,
कोई मुझे दखे तो खीसे निपोरता हूँ,
फिर जसे पास-पास धिरती खामोशी से
धबरा कर सटक जाता हूँ ।

एक तोते की मृत्यु

महुवे के जंगल में
पेड़ों की खोडर में
जमा धूप में उफना
मधु पी कर एक तोता
शहर की बुजों पर,
किलो के खडहर में
और यहाँ तक कि सगीत की महफिल में
गाता है ।

शहर में लोग ध्यान नहीं देते हैं,
किले तो वैसे भी निजन ही होते हैं,
सगीत-सम्मेलन में उस्ताद हँसते हैं,
मिटठू मिया अपने आप
उस्ताद बन जाता है ।

अंधेरा होने पर वह महुवे के वन में
लौटने का रास्ता भूल जाता है
घाटों तरफ तने बिजली के तारों से
टकराता, मर जाता, और अटक जाता है ।

1983

हस का प्रयाण

आज की रात रुक जाओ हस,

अभी तो शहर म दिये भी नहीं मुझे ।

हमको ठहरना या इतना ही बस यहाँ,

सम्बा है रास्ता, बर्फ की चोटियाँ,

नीला गूँथ आकाश, नीचे छोड़ यह दुनियाँ,

चिरतन मौन खड़ी वाली विटपावलियाँ

पार कर, तारों के पार जाना है मुझे ।

आज की रात रुक जाओ हस

अभी तक बहुत लोग नहीं मिले हैं ।

मिलना या बिछुडना दोनों ही हैं छलना,

हस का ध्येय मानसरोवर पहुँचना ।

कोई नहीं पराया, कोई नहीं है अपना,

लौटे नहीं कभी हस जो उड़ चले हैं ।

दो क्षण रुक जाओ हस, तुमको निहार लें ।

मुझको अपने भीतर देखो आँख मूंदकर,

मुझ-सा ही एक हस रहता है वहाँ पर,

वह भी उड़ जायेगा, एक दिन खोल पर—

उस पर ही ध्यान दें, उसको दुलार लें ।

आज की रात रुक जाओ हस, तुमको निहार लें ।

विदा के समय ज़रा आरती उतार लें ।

अनन्त यात्रा

उतनी ठंड में, उस अंधियारे में
सारे सम्बन्ध टूट अपने ही जाने पर
भी मैं क्यों सदा रहा बसस्टॉप पर ?

पता था तुम न कभी रुकने को कहोगी,
बेवकूफ़ होती हूँसती रहोगी,
जो होगा, बेवकूफ़ औपचारिकता होगी,
फिर भी

उस ठंड के खामोश अंधियारे में
छूट मैंने जाने दी बस पर बस निरंतर ।

शायद मालूम था—

जीवन का अंतिम जुआ हार में चुका हूँ,

शायद मालूम था—

घर-ब्यूट में घिरे अभिमन्यु की तरह
कमर से तलवार उतार मैं चुका हूँ ।

शायद मालूम था

अपने ही किले में दूर-दूर गूँजती
अपनी ही प्रतिध्वनि बात मुझमें करेगी ।
शायद कभी तुम्हारी हँसी सुनायी देगी ।

जाना नहीं है तुम्हें ? तुमने जब कहा था,
विपरीत दिशा की किसी अनजानी
बस पर मैं दौड़कर चढ़ा था,
जो अभी तक चलती ही जा रही है ।

द्वीपस्वामिनी को विदा

मैंने तुमको वचन दिया था
द्वीपस्वामिनी,
जब मैं जाऊँगा, तब तट से
स्वप्नद्वीप की ओर तुम्हारे
दीपक एक बहा जाऊँगा ।

जाने को हूँ सदा
दीप पर दीप बहाता जाता हूँ मैं,
पर प्रवाह है तीव्र, डुबोता दीप
न कुछ कर पाता हूँ मैं ।

हैं घडियाँ अनेक, शपथ है
नहीं तैरकर मिलने आना—
तुमने मुझसे कभी कहा था,
बहुत पुरानी है यह गाथा,
लेकिन उसका व्यतिक्रम करना
मेरे धस की बात नहीं है,
रुक सकना भी अब तो मेरे हाथ नहीं है ।
बिना द्वीप तक दीप बहाय
द्वीपस्वामिनी, जाता हूँ मैं !
आज प्रवाह तेज ज्यादा है,
और न कुछ कर पाता हूँ मैं ।

तन-तरवर

जब पछी उड गया,
पेड वह क्षार हो गया ।

यही पेड जिसके तले आबर
घुडीवाले और विसाती
तरह-तरह की चीजें लाबर
घँठे थे सामान लगाकर ।

यही पेड जिसकी ढालो पर
रगबिरगी हुई रोगनी,
लगी भँडियाँ, हुई सजावट
हुई प्यार से उसकी मगनी
एक सता से, जिसे देख सब
कहते थे—नाजुक है कितनी ।

फिर

उस पर बघ गयी अलगनी
तरह-तरह के गपडे सूखे,
तरह-तरह की हुई दावतें
तरह-तरह के जदन अनूठे—
पर जब उस पर रहता आया
अनदेखा उड गया विहग—
पेड वह क्षार हो गया ।

1983

बन्दर

उहाने एक बन्दर पाला है,
जो वह स्वयं करने में असमर्थ है,
बन्दर करता है—
धूँदता, फाँदता, नवल उतारता,
बिलकारी भरता है ।

कोई इच्छतदार मेहमान आता है
खूँटी पर टोपी सटकाता है,
बन्दर एक भपट्टे में उसे उड़ाता है ।
कोई फटेहाल आता है
बन्दर उसका मुँह नाचने लग जाता है ।

और वह मुस्कुराते हैं
ऊपर ही ऊपर से माफी माँगते हैं,
लेकिन फिर उनकी हँसी
रोके नहीं रुकती है,
पेट दबाकर लोटने लगते हैं
बीच-बीच हाथ जोड़
“माफ कीजिएगा ।”
बहते हैं ।

समझौते

गोबर के हूंगर पर
मुर्गा चढ़कर तनकर
बोला—“बूबू-बूजूँ ।”
कहीं से बिलरिया आ
ले गयी उसको उठा ।

दीवार के पीछे बँठी बिलरिया,
झपटी उसपर दारोगा की कुतिया,
छीन मुर्गा ले गयी
भाग्य है भइया ।

कुतिया तह के तले
बैठी मुर्गा लेकर ।
ऊपर थी एक चील
काट रही चक्कर—

एक झपट्टे में वह मुर्गा ले गयी,
ऊपरवाले से कौन सट सका है ।
कुतिया बिलरिया का
समझौता हो रहा है,
मुँ की मुर्गा को भी
बुलाया गया है ।

माण्डूगढ मे रात

इमी पगढण्डी पर
बीच-बीच ठहर-ठहर
होली मे आती थी
रानी रूपमती पलाश बटोरने ।

इसी दुग से चलकर
आगे जो कुण्ड है
उसमे भरकर पलाश
आती थी रूपमती मुमन-रग घोलने ।

दुग यह अभी भी है ।
सेना समय की
मभी कुछ रौंदकर दूर चली गयी है ।
जिन तरहओ के तले
किमखावी परदो की पालकियाँ रुकती थी,
वहाँ अब गडरिये रोटी पकाते हैं ।
जहाँ कभी मुक्कन हास्य तरह तले गूँजा था
माण्डू के दुग मे
रवि अस्त होते ही
श्रृंगाल चले आते हैं ।

केवल लटकाये एक धुधली-सी सालटेन
सरकारी दो नौकर
ऊँघते रहते हैं ।

योगमाया

जहाँ तक आँख जाती है
उही का इलाका है,
जिन्हें कहते हैं महामाया,
वह ही धुक्ता करती हैं
जिसका जो भी है बकाया ।

दुग्ध की रक्षिका, इसीलिए दुर्गा हैं,
सूर्य और चन्द्र उनके दो स्तन हैं,
उनके प्रकाश का दूध पी-पी कर
जन्मते, बढ़ते, कालकवलित होते जन हैं ।

सबने उन्हें एक एक अमोघ अस्त्र दिया है,
स्वयं विशार राजा ने उन्हें नियुक्त किया है ।
राजा सदा राजकुमार रहना चाहता है,
प्रेम में मत्त मधुर नवल मृत्यु करता है,
मृदुल गीत गाता है,
पहले उन्हें भेजता है
जब भी यहाँ आता है ।

घोड़े दिन बावडिया
प्रेम की धारणी से लबालब भरती हैं,
फिर राजा अथ लोक में प्रयाण कर जाता है,
कल्पनाएँ कवियों की
उस घोड़े समय का युग-युग वर्णन करती हैं ।

1981

तोता

आप इस तोते के रंग पर न जाइये ।
यह सिर्फ देखने में हरा है,
मगर सफेद अँग्रेजी तोतो को सिखानेवालो से
इसने बोलना सीखा है,
रंग को छोड़ कर और सब बातों में
अँग्रेजी तोता है ।

हिंदुस्तानी तोतो की
सिफ चोच लाल होती है ।
इसकी, ज़रा गौर से देखिये,
एक नाक भी है,
चोच नीचे है, तो नाक ऊपर है
इसीलिए घाक भी है ।

आप अगर इसे हिंदी में बोलना
सिखायेंगे,
वही वाक्य यह आनन-फानन में
अँग्रेजी में अनुवाद कर बोलेगा,
किसी भी डाली को पत्तों से तोड़कर
लकड़ी बना भूम भूम
इधर-उधर ढोलेगा ।

1983

दायित्व

मेरा एक ही दायित्व है—
जो धारा मुझे वहन कर रही है,
आगे ले जा रही है,
उसके अनुकूल रहूँ ।

अपने अहंकार के डण्ड से
उसे न बाटूँ,
जिस भी दिशा में बहे
उसी में बहूँ ।

उस धारा पर विश्वास रखूँ ।
वह जिस दिशा में बहे
उसमें रखूँ आस्था,
उसके बहाव का करूँ नमन,
क्षमा माँगूँ उससे
कि वह कर रही है मुझे वहन ।

वह ही मेरी मजिल है,
वह ही है रास्ता,
उसका ही निमल जल
है मेरा शास्ता ।

1983

कवि की मृत्यु

सब कुछ वैसा ही है—

नीला आकाश, पीली धूप, खामोश पेड़,
गाती चिड़ियों,
खेतों की गरु से पुती हुई लम्बी मेड़ ।

सब कुछ वैसा ही है—

मैदान में खेलते बच्चे, सुबह धूमने जाते वृद्ध,
स्कूलों से लौटते लड़के,
लड़कियाँ,
मन्दिर से लौटती हुई बुढ़िया ।

सब कुछ वैसा ही है—

पीली-पीली गडही में काली-काली भस्में
चू-चरमर भूमती जाती वैलगाड़ियाँ,
नीले आकाश में चक्कर काटती हुई चीलें,
सफेद फूल, घास में जैसे बिखर गयी खीलें ।

घाट की तीसरी सीढ़ी का टूटा पत्थर,
मरघट के धुएँ से एक तरफ काला पड़ा
पेड़ पीपल का खड़ा,
और मिट्टी के मवानों में एक पक्का घर नया,

लेकिन जिसने इन सबको चाहा था,
कविता में सराहा था,
सिर्फ वह चला गया ।

खरोदारो से

मेरी पीछा वे खरीदारो !
बसम अपने माल की,
माल खरा है ।

अदर से निकला है
जो नीर आँख में भरा है,
बल पेशानी के
वर्षों के हलो से खुदे हैं,
तब पीछा की उगी है फसल,
जिसे चुगने शब्दा के पछी
जुड़ते करते चहल-पहल ।

आँखों की खिडकी से भाँकने पर
मन की नदी के तट दूर-दूर
रेत बिछी है जैसे हीरचूर !
टूटे हुए शीशे के पहाडा से सपनों की
बस यही याद बची है ।

पहले कभी यहाँ एक काँच का शहर था,
बिल्लौर की थी पवत-श्रेणियाँ !
एक के बाद एक कई भूकम्पो ने
धूरचूर कर दिया शहर और घाटिया,
ठंडी तराइयाँ ।

1933

चैंस्टर पहने तुम

शाण पर घर कर शिशिर फिर
छुरी ले आया !
धूप गहरी सुनहरी औ' इस बनी की हरी
गहरी हो गयी कुछ और छाया ।

चैंस्टर पहने हुए तुम आ गयी—
जामनी हलके काले पाठ की साड़ी,
हाथ मलती, कुछ ठिठुरती,
प्यार से पाने तुम्ह पागल हवा आयी पहाड़ी ।

प्यार जितना वह जताती
चैंस्टर मे देह तुम अपनी छिपाती,
खिलखिलाते पेड शीशम के
और मँनाएँ
तुम्हारे चरण मे आ गीत गाती ।

और स्वर कर तनिक ऊँचा
मुझे तुम बाहर बुलाती—
पेड शीशम के दिखाती,
मदुल उँगली उठा कर नभ नील बतलाती,
खिलखिलाती—

मैं ठगा-सा देखता
धूप वैसे बाल लम्बे और बाले
सुनहले रंग के बनाती ।

जाते-जाते

जूड़े में सूरजमुखी लगाये
ऊपर हँसती, भीतर उदास
विदा मुझे देने बस से
आयी तुम,
बैंग मेरा उठाये, करती विनोद
जैसे कितनी
बात यह अच्छी है
कि मैं जा रहा हूँ ।

बस पर मैं बैठ गया ।
घण्टी बजी, बस चली ।
दुपहर के पवन में दूर तक भी पहुँचकर
देखा जो झाँक कर
पाया तुम्हें उधर ही देखते—
लगा बस से उतरकर
भाग लौट कर कहूँ—
मैं नहीं जा रहा हूँ ।

1983

उठ गयी गोष्ठियाँ

अब कबूतर यहाँ नहीं आते ।

खुली हुई खिडकी से
शीलें बिखेरती धूप आती है,
गाँव के घाट पर
चमका कर रखे हुए
चादी के पायजेब
हवा उठा लेती है—
सस्स सस्स बजाती है,
मगर कुर्सियों पर अब
शकलें हैं अजनबी
बिना पते के लिफाफे
ढाकिया दे जाता है कभी-कभी ।

चले गये वे लोग,
उठ गयी गोष्ठियाँ,
जो दो चार लोग पुरानी महफ़िल के बचे हैं
उनको नये छोकरे नहीं पहचानते—
कभी-कभी ये मिलते हैं
पुरानी तस्वीरों दीवारा से उखाडते,
खुद एक दूसरे के
रंगीन चित्र चिपकाते—

मगर

अब कभी भी
यहाँ कबूतर नहीं आते ।

वे बीते सवेरे

सवेरे अब ठडे होने लगे हैं ।

याद आते हैं कालेज के वे दिन,
जब बाहर
तुम्हें अहाते की धूप में
चाकलेटी चेंस्टर पहन
सोने के झरना में
धूमता देखता था ।

उस चौड़े अहाते में
न धाग, न बगीचा था,
फिर भी शिशिर ने
जगली झाड़ियाँ पर
नारंगी रंग उलीचा था ।
नारंगी फूलों से भरी थी झाड़ियाँ,
झरे हुए फूलों से पटा था अहाता ।

उनके बीच तुम्हें मैंने
विस्तर में से खिडकी से देखा था—
चेंस्टर नया था
जाड़ा आ गया था
क्या यह हो सकता था—
ऐसा सब रहे सदा ।

मैं तो महज एक विद्यार्थी था,
तुम बहुत छोटी थी—
हमारी मरजी से बड़ी बड़ों की थी मरजी ।

1983

परिक्रमा

जाने किन अनजाने मदिरो की
परिक्रमा पूण कर
याद लौट आती है,
हिलत हरे वांस के
बने समझदारी के
लम्बे पुल पार कर ।

पुल जिनके नीचे से
बहती है फेनोज्ज्वल
नदी रिवाजो की—
नदी
जिसके उस तट से
आती आवाज है
सफलता के बाजो की ।

मुझे स्वप्न मे बताया गया था
लक्ष्मी के नूपुरो की मीठी रणकार मे
वीणा वीणावादिनि की
सुनायी नही देती है ।
नूपुर के सुर सुनकर सरस्वती
पुर तजकर वापस चल देती है ।

शपथ से कह सकता हूँ—
अभी तुम जहाँ भी हो, अच्छी हो,
अभावो के चक्रव्यूह
मे फसने से बची हो ।

कालान्तर

सूना बरामदा वह गोल चौड़ा पत्थर का
अब भी वही होगा,
सामने का पेड़ वह पलाश का
फूलों से लदा होगा ।

मालूम नहीं, अब उस मकान में कौन रहता है ।
कोई मेरा जैसा लड़का, कोई तुम्हारी जैसी लड़की ?
जगल में घूम कर वापस घर लौटने पर
शायद वह भी तुम्हारी तरह
ताड़ के गमला के बीच लगे नीचे नल
के नीचे अपने दोना
पाँव चप्पल-समेत धोती हो ।
क्या वह लड़की भी बस में
स्कूल से लौटती हागी दुपहर ढले ?
क्या वह लड़का भी बाट तकता होगा
खड़े पलाश तले ?

यही सब सोचकर मैं वहाँ गया था,
इतने साल बाद भी दिल मेरा
धबराता बड़ा था ।
धुसते ही जो देखा उससे धक्का लगा—
जहाँ था अपना बरामदेवाला मकान
वहाँ एक फाइव स्टार हाटेल खड़ा था ।

कालान्तर

सूना बरामदा वह गोल चौड़ा पत्थर का
अब भी यही होगा,
सामने का पेड़ वह पलाश का
फूलों से लदा होगा ।

मालूम नहीं, अब उस मकान में कौन रहता है ।
कोई मेरा जैसा लडका, कोई तुम्हारी जैसी लडकी ?
जगल में घूम कर वापस घर लौटने पर
शायद वह भी तुम्हारी तरह
ताड़ के गमलों के बीच लगे नीचे नल
के नीचे अपने दोनों
पाँव चप्पल-समेत धोती हो ।
क्या वह लडकी भी बस में
स्कूल से लौटती होगी दुपहर ढले ?
क्या वह लडका भी बाट तकता होगा
खड़े पलाश तले ?

यही सब सोचकर मैं वहाँ गया था,
इतने साल बाद भी दिल मेरा
घबराता बड़ा था ।
धुसते ही जो देखा उससे घबका लगा—
जहाँ था अपना बरामदेवाला मकान
वहाँ एक फाइव स्टार होटल खड़ा था ।

झील की स्मृति

पानी पर हर दोपहर
पत्थर तैराने को
झील के द्वीप पर हम दोनों मिलते थे ।

तरा-तरा पत्थर जब खूब धकते थे
एक झुकी पृथ्वी पर आयी हुई डाल पर
खूब कूद कूद कर हँसते-उछलते थे ।
नाचें बना केले के पत्तों की
फूलों से उनको भर
तैरा हम देते थे झील की तरंगों पर ।
चकमक बौन कर, उनको रगड़कर
अग्नि प्रकट करते थे,
खूब खुश होते थे ।

गुजर गये मास, वष,
उतर गये शोक-हृष काल के पार कहीं ।
अब न वहाँ चकमक है
सब कुछ अलग है—
द्वीप के चारों ओर
लाल-लाल बजरी की वन गयी सड़क है ।

क्षील की स्मृति

पानी पर हर दोपहर
पत्थर तैराने थे
भील के द्वीप पर हम दोनो मिलते थे ।

तैरा-तैरा पत्थर जब खूब धक्के थे
एक भुकी पृथ्वी पर आयी हुई छान पर
खूब खूद-खूद कर हँसते-उछलते थे ।
नावें बना केले के पत्तों की
फूला से उनको भर
तैरा हम देते थे भील की तरगा पर ।
घबमक चीन कर, उनको रगड़कर
अग्नि प्रकट करते थे,
खूब खुश होते थे ।

गुजर गये मास, वष
उतर गये गोब-हूप कास के पार वही ।
अब न वहाँ घबमक है
सब कुछ अलग है—
द्वीप के चारो ओर
सास सास बजरी की बत गयी सडक है ।

1981

कविता

अपने लडकपन में
दूर नीले पहाड़ पर
सपने का एक दुर्ग मैंने बनाया था ।
सफेद घोड़े पर जिसका एक कान काला था
मैं बैठा करता था,
आसपास कचनार-ब्रुसुमो के कानन में
पवन सारे वन को सजग करता था,
घोड़े से उतरकर
जूरी के जूते पहन जब मैं वहाँ विचरता था ।

सरसो के खेत के आसपास
मिट्टी की मेड़ पर भी सरसो के चार फूल
ऊपर उग आये थे,
महका महका पवन, ऊँचा लहँगा पहन
तोतो को भगाने को
घुलाते हुए गोफन
देख तुम्हें, अटका मन ।

घोड़े पर बिठा तुम्हें दुर्ग में लाया था ।
तेज उड़ते घोड़े पर आगे तुम बैठी थी
केशकलाप घना पीछे लहराया था ।
केशो को तुम्हारे मुख पर से हटाकर
नाम जो पूछा था,
बहुत धीमे स्वर में तुमने
कविता बतलाया था ।

झील की स्मृति

पानी पर हर दीपहर
पत्थर तैराने को
झील के द्वीप पर हम दोनों मिलते थे ।

तैरा-तैरा पत्थर जब खूब थकते थे
एक झुकी पृथ्वी पर आयी हुई ढाल पर
खूब कूद-बूद कर हँसते उछलते थे ।
नावें बना केले के पत्तों की
फूलों से उनको भर
तैरा हम देते थे झील की तरंगों पर ।
धक्कामक वीन कर, उनको रगड़कर
अग्नि प्रकट करते थे,
खूब खुश होते थे ।

गुजर गये भास, वप,
उतर गये शीत-रूप बाल के पार कहीं ।
अब न वहाँ धक्कामक है
सब कुछ अलग है—
द्वीप के चारों ओर
लाल लाल बजरी की बग गयी सड़क है ।

1981

बनाया एक शहर

मीने सब सटवें जमा की
प्यार की, उपरत की, लोभ की, द्वेष की
और तारपोल की सस्ल अहंकार की,
इधर की, उधर की,
और बनाया एब शहर,
जिसम सब था,
तापत थी, बमजोरी थी,
बफाई, बयफाई थी,
मगर बाजार न था ।

यहाँ किसी को कुछ भी छुपाना न पडता था,
प्यार करे पर बताना न पडता था,
मगर वहाँ खरीद फरोस्त नहीं थी,
त्रय बँस करें कोई विग्रय ही नहीं था ।
गन्धुओ का सतरा तो था, पर मित्रा से भय न था ।
नारी प्यार करती थी पर मातत्व का आग्रह न था ।
जब पुरुष प्यार करता था
तब बिना अधिकार के, आसक्ति के
लिखता था कविता, कहानी, कथा ।

गरज कि गरज नहीं किसी को किसी की थी ।
जैसी भी जिसकी भी हाती थी जिदगी
वैसी ही उसको से वह कल्पना से सजाता था,
वास्तविक तथ्यो को कल्पना से शुद्ध कर
यथाथ बनाता था ।

अगर कभी ऐसा हो

अस्पताल की सुबह सी उदास
खिदगी यदि हो जाये,
'तैसे किसी बच्चे की नयी गेंद
फूलबाग में खो जाये ।
ढूढना असभव हा
क्याकि रात हो जाए,
मान लो कभी ऐसी बात हो जाए ।

सडकें सुनमान हो,
लौटते हुए लोगो को अपने घर न मिलें,
सडक के किनारा की ऊँधी इमारतो की
खिडकियाँ बन्द हो,
कभी-कभी खामाशी में सुनसान सडको से
टैंक्सियाँ निकलती हा ।
सिफ कुछ मोमबत्तियाँ
बुझने के पहले मोम की चट्टान
बनने को पिघलती हो,
ऐसी यदि स्थितियाँ कभी हो ।

तब उसके नाम की जोर से पुकार कर
जिसका पता तेरे हाथ में जो खत है
उस पर लिखा है,
और जिसके इलाके में तू है
पर जो न अभी तक दिखा है ।

1983

साहसवार

भरी जवानी मे मैं धोटे पर से गिरा ।

तब तर्क की अस्थियाँ मजबूत नहीं हुई थी,
सिर्फ नम मास था स्वप्न का,
मैं तुम्हारी नज़र की सड़क से
प्यार के सागर की ओर जा रहा था,
जहाँ रस्मों की चट्टानें थी,
रिवाजों के कगार थे,
और बुद्धिमान समझदार हमारे परिवार थे ।

हड्डियाँ जो टूटी अभी तक जुड़ी नहीं,
मार जो आदर लगी अभी तक भरी नहीं,
कल्पना का घोड़ा उदास
मेरे आसपास घूमकर
हमदर्दी जता रहा है,
मानो बता रहा है—
पहले भी लोग गिरे हैं,
आगे भी लोग गिरेंगे,
मगर किसे गुमान था—
इतनी कम उम्र मे आप
घोटे पर चढ़ेंगे ।

दावत को समाप्ति

त सत्म होने के पहले ही
दावत सत्म हो गयी ।

उ से अजनबी आ गये,
रा तो बहुत था, पर सब खा गये—
तक अपने बुलाये हुए लोग बँठे
त सत्म हो गयी ।

हने खा लिया था
पर हाथ फेरते कहवहे लगाने लगे,
य मिलान लगे,
र बनियाने लग—
हर के पटीचर भी, अब रईसों की तरह
वत जमाने लगे ।

गे अपने घे उन्होंने
तन म आकर कहा—
'बलिहारी, आपका मजमा अच्छा रहा !
म तो सिर्फ आपके प्रेम में घ्राये घे
राज दावत का मुश्किल था मामला !
गर अनिमित्त जन
भी करें पेटभर भोजन,
शवत तो वही है,
बिन खाये भी उससे तुष्ट होते सज्जन !'

1983

सर्चलाइट

अब यह मोटर मिट्टी है,
मगर कीमती हैं इसके कुछ हिस्से ।
दु ख है कि यह अब चल नहीं सकती,
आपको मैं धर तक पहुँचा नहीं सकता ।
लेकिन एक विनय है
इकार मत कीजिएगा—
उपहार देता हूँ आपको सर्चलाइट का,
और उसके साथ बँटरी भी,
वृपया ले जाएँ, यह चीजें हैं आपकी ।

कभी हम सफर म इधर-उधर जाते थे,
सफर म और लोग भी हमारे साथ आते थे,
आप यह मुला दें ।
बँटरी औ सर्चलाइट ले जाकर
आप अपनी मोटर म लगा दें ।
और शुभवामना लें—

अनजाने बनो मे, विपदा के दिनो मे
रोशन होता रहे आगे का रास्ता,
और सफर चला करे मुदिकलें तराशता

लडका और घोड़ा

बचपन में सवारी को जो घोड़ा आता था
घोड़ेवाले ने वह एक तगिवाले को बेच दिया ।

उसके छह साल बाद
पानीभरे घान के रोतो के बीच से,
लोहे के लम्बे पुलो पर चीखते
टिब्बे में रेल के
होस्टेल से लौटकर
खोजता दूढ़ता पहुँचा तगिवाले के अस्तबल,
घास, लीद, चमड़ा, और
अल्यूमीनियम के जूठे घतन,—
और खड़ा था घोड़ा हिनहिनाता प्यार से
गम साँस छोड़ता, धुंधले प्रसन्न नयन ।

उसकी साँस गले पर मैंने महसूस की,
उसने गर्दन मेरे कंधे पर रख दी,
उसके आँसू मेरी पीठ पर गिरे गरम,
और मैं खड़ा रहा !
तगिवाले ने कहा—
आपको पहचानता है ।

मैं वैसे ही खड़ा रहा—
मुझे ऐसा लगा
जैसे एक घोड़ा मालवे के किसी कस्बे के बाजार में
बही किसी अनजानी राह पर गिरकर सो रहा है,
और वह लडका जो उस पर घँठता था
उसके पास खड़ा रो रहा है ।

माँ

माँ तो एक हृदय है
सहस्रो शरीरो म जो सचल है,
मूर्तिमान गगाजल है ।

माँ,
कही रोटी सँक रही है, कही आचल से शिशु को ढक
पहरा दे रही है,
कही अपने बेटे के किसी बेघर दोस्त को
खाना परोस रही है !
कही डाट रही है, कही प्रोत्साहन दे रही है,
कही पराजित शिथिल शरीर को
बाँहो में उठाकर खड़ा कर रही है !
कही सबका पीछे कर
पुलिस की गोली के सामने खड़ी है,
कही भारत माता बन मुक्तकेसा भुङ्कट पहन
किये है ध्वजा धारण ।

गम में जो रहे, जमे,
वह ही केवल मा नहीं है !
अनायास पहुँचे हुए, भ्रूल से भुके हुए
रास्ते पर रुके हुए को आश्रय देती है,
उसके ही कंधे पर चढ़े हुए बच्चे जब
उसके कद पर व्यग्य करते हैं
वह हँस देती है—
देह नहीं, ध्यक्ति नहीं, ममता नहीं, शक्ति नहीं,
माँ तो शुद्ध हृदय है !
उसमें से निकल कर, उसमें जग विलय है ।

जन्म	11 जुलाई, 1928, इन्दौर (मध्य प्रदेश) ।
शिक्षा	सेण्ट स्टीफेन्स कालेज, दिल्ली अंग्रेजी में एम० ए० ।
वर्तमान कार्य	बम्बई के सिद्धाय कालेज अ ग्राट्स एण्ड साइन्स में अंग्र विभाग के अध्यक्ष ।
प्रकाशित कृतियाँ	सिक्स माडर्न इंगलिश पोयट 1973 घीमी सासें (उपन्यास 1973, गुलाबी भ्रंघरा (दीघः 1976, लीटो सिन्दवाद (का सग्रह) 1978 अमलतास (कविता सग्रह) 1984, समकालीन अंग्रेजी कविता पर अंग्रेजी में अनेक महत्व लेख ।
सम्पादन	सिद्ध (वार्षिक), अंग्रेजी ँ रिसच जनल, पिछले पन्द्रा से । पोयटी फ्राम वाम्बे (इ कालिक) भारतीय कवित अंग्रेजी अनुवाद । इनमें अ प्रायः तीन अंक प्रकाशित
प्रकाश्य	सिंधुदुर्ग (निबध-सग्रह) चार 'सप्तक' एक विवेच (दीघं निबध)
पता	चन्दन निवास, कुर्ला रोड, (पूर्व), बम्बई-400069